

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180819

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/K45S Accession No. G.H. 448

Author शं. डेकर, वि. स. ।

Title संध्यादीप ।

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सं ध्या दी प

क हा नी सं ग्र ह

वि. स. खांडेकर

प्रकाशक
रा. ज. देशमुख
देशमुख आणि कंपनी
१९१ शनवार, पुणे २



अनुवाद कर्ता
माणिकलाल परदेशी



सर्वाधिकार सुरक्षित



मूल्य तीन रुपये



मुखपृष्ठ
दीनानाथ दलाल



मुद्रक
गं. शं. दाते
कलागृह प्रेस,
६६६ सदाशिव, पुणे



●
पूजनीय रा. ह. भडकमकर
तथा
पूजनीय सौ. जानकी भाभी
को
सप्रेम समर्पित
●

तीन जगत् !

ताड़ — तड़ाड़ — ताड़ —

तालियों की उस प्रचंड कड़कड़ाहट के कारण रघुनाथ सहसा चौंक पड़ा। गाँव के प्रधान चौराहे में गांधीजी की मूर्ति का उद्घाटन समारोह हो रहा है। उपस्थित मेहमानों में जो विशेष मेहमान हैं, वे एक देशभक्त नेता हैं। उनके निकट ही उसके सेठजी बैठे हैं। इस मूर्ति की स्थापना के लिए सब से अधिक चंदा तो उन्होंने दिया है। उपस्थित नेतागण रस भरे शब्दों में इस विषय पर भाषण दे रहे हैं कि गांधीजी ने हमारे देश में क्रांति की आग किस तरह चारों ओर फैला दी है... और ऐसे समय वह ऊँघ रहा है।—

छी: छी:। सेठजी ने कहीं यह देख लिया तो ! रघुनाथ ने मुश्किल से अपनी आँखें खोलीं—

अपनी आँखों पर उसे विश्वास नहीं हुआ। सभा में होने वाले वक्तव्य वह नहीं सुन रहा था। वह तो किसी भिखारिन की धोती जैसी, कई स्थान पर थिगलियाँ लगी अपनी मसहरी में सोया हुआ था। मसहरी में लेटे लेटे वक्तव्य सुनने की आपत्ति पुरुषों पर अक्सर आती है; लेकिन यह सच होने पर भी उस तरह की आफत का शिकार आज तक रघुनाथ को कभी नहीं होना पड़ा था। जानकी का मिजाज कुछ तेज अवश्य था। लेकिन वह यह नहीं जानती थी कि अपने क्रोध या प्रेम को शब्दों द्वारा किस तरह प्रकट किया जाता है। उसकी आँखें ही सुख दुख की सभी बातें बिना पूछे ही रघुनाथ से बता देती थीं। और इस समय तो ये निमीलित आँखें भी कमल के समान—

नाँद में मुस्कराने वाली जानकी की ओर रघुनाथ ने पलभर जी भर के देखा। रघुनाथ और उसके बीच सोये हुए मोहन की देह पर उसने अपना बायाँ हाथ

आहिस्ता से रखा था। फूलों पर ओस नहीं गिरती? ठीक उसी तरह। रघुनाथ ने उस हाथ की ओर देखा। सोने की सिर्फ एक ही चूड़ी उस हाथ में दिखाई दे रही थी और वह भी एक तोले से कुछ कम की ही होगी। उसकी नाजुक हथेली को उसने धीरे से छू कर देखा,—बर्तन मँजने के कारण उसमें कई जगह खरोंच की निशानियाँ पड़ गई थीं उन्हें भी उसने देखा और अपना हाथ वहाँ से इस तेजी के साथ हटा लिया कि जैसे उसे आग छू गई हो। पलभर उसे आभास होने लगा कि ये सब खरोंच उसके दिल के जख्म हैं। पाँच वर्ष के पूर्व वह बड़े प्यार दुलार के साथ पत्नी के रूप में उसे ब्याह कर इस घर में लाया था। इस साँवली—सलौनी, अल्हड़ बालिका को मातृत्व प्राप्त हुए दो वर्ष हो गए लेकिन तब भी, एक छोटा सा आभूषण तक पहनाकर उसकी देह को वह अलंकृत न कर सका। जानकी की एक भी आकांक्षा, अभिलाषा की वह पूर्ति न कर सका। इस विचार से वह बेचैन हो उठा।

झट उसका ध्यान मोहन की ओर आकृष्ट हो उठा। सूना सूना सा दिखाई देनेवाला उसका गला—इन पाँच वर्षों में जानकी ने ज़िद सिर्फ एक ही बार की थी। पिछले वर्ष मोहन की प्रथम वर्ष-गांठ की घटना है। वर्ष गांठ के कुछ दिनों पहले से जानकी ने रघुनाथ से कई बार कहा था कि मोहन के लिए एक तोले की सोने की एक चेन बनवाई जाय। उस चेन में नन्ही सी लॉकेट भी रहे और उस लॉकेट में गांधीजी का एक नन्हा सा चित्र.....लेकिन...

पचास रुपये माहवार में, कपड़े की एक दूकान पर दिन के दस घंटे परिश्रम करनेवाले क्लर्क की स्त्री का इस प्रकार हठ करना निरा पागलपन नहीं तो और क्या है? उसे तो चाहिए कि प्रातःकाल से लेकर संध्या—समय तक चुपचाप गृहस्थी का बोझ ढोती रहे और अपने नन्हे को सजीली सुरत में, देखने की लालसा जब अत्यधिक प्रबल हो उठे तब चार आठ आने में, बाज़ार में मिलने-वाली, काँच के रंगबिरंगे मोतियों की माला उसे पहनाकर उसी में अपने जी की तसल्ली कर ले।

रघुनाथ की स्मृतियाँ हठात् जागृत हो उठीं। जानकी की यह ज़िद वह किसी तरह पूरी न कर सका था। यहाँ मढ़गाई तो दावानल की तरह बढ़ती ही जा रही थी। पचास रुपयों की तो चार दिनों में चुटकी भर खाक हो जाती थी। ऐसी दशा में मोहन के लिए एक तोले की ही क्यों न हो, चेन बनाने के

लिए रुपये कहाँ से आते ? ऐसा ही कुछ कहकर कि आभूषणों के समान ज़िद भी धनवानों ही को शोभा देती है, मोहन की सालगिरह के दिन जानकी को मनाने की उसने कोशिश भी की थी। इसके बाद जानकी ने भूलकर भी दुबारा कभी चेन का जिक्र नहीं किया। फिर भी अड़ोसी पड़ोसियों के बच्चों के गले में सोने के आभूषण देखते ही उसके मुँह पर छा जानेवाली उदासीनता की झलक छिपाए नहीं छिपती थी। इसी से रघुनाथ ने निश्चय कर लिया था कि मोहन की अब की सालगिरह के दिन.....

परमात्मा की कृपा से रात के नौ से दस तक उसे एक का ट्यूशन भी मिल गया। वह मैट्रिक पास नहीं था, फिर भी अँग्रेज़ी पढ़ाने का ट्यूशन उसे मिल गया। इस बहाने बात बनाकर कि दूकान से छुट्टी मिलने पर वह लाईब्रेरी जाता है और वहाँ पर वह एक घंटा पढ़ा करता है, लगभग एक साल से वह जानकी की प्रवंचना कर रहा है। लेकिन खैर ! आज उसका वह सब परिश्रम.....

रघुनाथ खुली आँखों से स्वप्न देख रहा था।

आज मोहन की दूसरी सालगिरह है। सर्राफ़ ने वादा किया है कि आज दो-पहर में बारह बजे तक चेन बन जायगी। सर्राफ़ के यहाँ से चेन आ जाने पर रघुनाथ उसे चुपके से जानकी के हाथ में थमा देगा। उस समय जानकी खुशी से फूली न समाएगी। रघुनाथ के जैसा पति पा कर वह गर्व का अनुभव करेगी। भोजन के उपरांत पान देने के लिए जब वह उसके पास आएगी तब.....तब वह उससे कहेगा—‘यह तो आज तक हजार बार देखा कि पान खाने वाले का मुँह ज़रूर रचता है, लेकिन यह कैसा अद्भुत चमत्कार है कि वही रक्तिम आभा, पान खिलानेवाली के कपोलों पर भी चढ़ आती है.....’

कल्पना—सृष्टि में लीन रघुनाथ ने जानकी की ओर देखा। उसका निश्चित हँसमुख चेहरा देख उसे संदेह होने लगा कि कहीं उसका रहस्य वह भाँप तो नहीं गई ?

रघुनाथ उसकी ओर उसी प्रकार एकटक देखता रहा। देखते देखते उसने सोचा, उसके सेठजी की रखैल रोशन बाई से भी जानकी कहीं अधिक सुंदर है। लेकिन एक दरिद्र पुरोहित की पुत्र-वधु और एक निर्धन क्लर्क की स्त्री होने के कारण उसकी देह पर रत्ती भर भी सोना नहीं है। उस रोशन बाई के जैसी यदि वह किसी धनवान की.....

अपने दिल में ऐसी अजीब कल्पना का उद्भव कैसे हुआ इस पर स्वयं उसे ही विस्मय होने लगा । फूलों के ढेर में से सहसा बिच्छू निकल पड़ा हो वैसी ही वह कल्पना उसे मालूम होने लगी । रोशन जैसी देह बेचनेवाली कमीनी स्त्री के साथ जानकी जैसी पतिव्रता स्त्री की तुलना करने में, वह जानकी के साथ महान् अन्याय कर रहा है इस विचार से वह विव्हल हो उठा । उसने अपने दिल में कहा, जानकी का जगत् पृथक् है और रोशन का जगत् पृथक् । पति ही जानकी के लिए परमात्मा है—उसका नन्हू ही उसका नारायण है और रोशन के जगत् में पैसा ही परमात्मा है । यह दोनों जगत् बिल्कुल विभिन्न हैं । एक स्वर्ग और दूसरा नरक ! !

‘ खाड़ — खाड़ — खाड़ ’

अब कहीं रघुनाथ की समझ में आया कि कुछ समय पहले वह चौंक कर नींद से कैसे जाग पड़ा । प्रातःकाल होने को था । उसके मकान के सामने से होकर देहातों से आनेवाली बैलगाड़ियों का आवागमन शुरू हो गया था । पथरीले और टेढ़े भेढ़े रास्ते से होकर गुज़रने वाली गाड़ियों की खड़खड़ाहट और कल शाम, सभा में सुनई देनेवाली तालियों की गड़गड़ाहट, इन दोनों ध्वनिओं का सम्मिश्रण न जाने किसने उसके स्वप्न में कैसे कर दिया — लेकिन उसी विचित्र आवाज़ के कारण—

गाड़ी की आवाज़ अब कहीं दूर सुनाई दे रही थी और उसमें अब पहले जैसी कर्णकटुता भी नहीं थी ।

कल के वक्तव्य में उसने जो कुछ भी सुना था उन बातों का उसे स्मरण हो आया । उसका मन उल्लास के कारण उछलने लगा । मसहरी में से वह चुपके से बाहर निकला । दरवाज़े की साँकल उसने धीरे से खोली । प्रातःकालीन शीतल समीरण के स्पर्श से उसकी देह पुलकित हो उठी । उसने ऊपर की ओर नज़र उठाकर देखा । कृष्ण-पक्ष की चौदस की चंद्रकला अत्यंत सुहावनी दिखाई दे रही थी. मानो उसकी निर्धन गृहस्थी में आनंद का साम्राज्य बनाए रखनेवाली जानकी ही की वह साकार प्रतिमा थी ।

संध्या समय नदी के तट पर, पानी में पैर छोड़कर बैठने से मिलने वाले आनन्द की प्राप्ति का, कल्पना ही से अनुभव कर रघुनाथ अपने ही हँस दिया और दरवाज़े की एक सीढ़ी पर वह बैठ गया । ठंडी ठंडी हवा के झोंके...सुदूर

किसी मंदिर में सुनाई देनेवाले शहनाई के मधुर स्वर...संपूर्ण विश्व को चंदन का उबटन लगाकर, ऊषा जैसे प्रभाती गा रही थी।

कल रात की अतीव गर्मी रघुनाथ को याद आने लगी। मसहरी में मोहून को लगातार करवटें बदलते देख जानकी ने कहा था '—राम राम। कैसी गज़ब की गर्मी है। मुझे तो लग रहा है कि जैसे किसीने मुझे खोलते पानी में छोड़ दिया है।'—

प्रातःकालीन शीतलता का अनुभव कर, रात की उस बेहद गर्मी पर रघुनाथ को संदेह होने लगा रह रह कर कल के भाषणों पर सोचने वाले उसके दिल ने कहा—छः घंटों के भीतर ही भीतर सृष्टि में कितना अद्भुत परिवर्तन हो जाता है। तब गांधीजी के लगातार पचीस वर्षों के परिश्रमों के फल-स्वरूप, समाज बदलने लगे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

कल उस देशभक्त व्याख्यानदाता ने कहा था—'बट्ट वामन-मूर्ति ने अपने तीन ही चरणों में त्रिभुवन को व्याप्त कर लिया था! हमारे पोथी पुराणों में वर्णित इस कथा को गांधीजी ने इस कलियुग में यथार्थ कर दिखाया है। धनवानों की दुनिया, मध्यम वर्गियों की दुनिया और कष्टसंकटों का मुकाबला करते हुए जीवन-यापन करनेवाले गरीबों की दुनिया, इस तरह के तीन जगत् अब तक समाज में विद्यमान थे; किन्तु गांधीजी ने इन तीनों जगत्‌ों की विषमता को मिटा दिया है और उन तीनों के सुंदर समन्वय से एक नूतन जगत् का निर्माण किया है।—'

और दृष्टांत के लिए उन्होंने उनके समीप ही बैठे सफेद खद्दरपोश, रघुनाथ के सेठजी की ओर इशारा किया था।

ठीक इसी समय, यह चुपचाप कहने के लिए कि उन देशभक्त महाशय के लिए रात की गाड़ी का सेकेंड क्लास का रिजर्वेशन कर दिया है, उसे सभा भंज पर सेठजी के पास जाना पड़ा था और सेठजी ने उस वक्त अत्यंत स्नेहपूर्ण ढंग से उसकी पीठ थपथपाई थी। इस दृष्य को लक्ष्य कर व्याख्यान-दाता ने अपने मूक अभिनय द्वारा मानो यह सूचित किया था कि '—देखिए, अपने एक सेवक के प्रति एक धनी व्यक्ति का बर्ताव कितना स्नेहपूर्ण है। यह सब गांधीजी के उपदेशों ही का फल है।'—तुरन्त उन्होंने सेठजी के पैरों के पास बैठे सीताराम की ओर इशारा किया। गांधीजी की मूर्ति पर अन्य लोगों के समान किसी हरिजन के हाथों हार चढ़ना जरूरी था। लेकिन इस बात का सेठजी को

ख्याल ही न रहा था। ठीक मौके पर इस बात का स्मरण हो आते ही सेठजी सोच में पड़ गए। हठात् भीड़ में खड़े सीताराम पर रघुनाथ की निगाह जा पड़ी। जानकी की चोरी से उस गरीब छात्र को रघुनाथ हर माह एक रुपया सहायता स्वरूप देता था। रघुनाथ ने उसे इशारा किया। वह आगे बढ़ा। रघुनाथ का उससे धनिष्ठ परिचय था। पीछे की ओर रखे हार के ढेर में से एक हार उससे हाथ में देने पर सीताराम ने वह हार मूर्ति के गले में डाल दिया। सीताराम वापस लौट ही रहा था कि इतनेमें देशभक्त व्याख्यानदाता ने उसे बीच ही में रोक लिया और अपने गले का हार उतार उसके गले में डाल दिया। तालियों की प्रचंड ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। कुछ झेंपता सा सीताराम शीघ्रता से सभामंच से नीचे उतरने लगा, इतने में सेठजी अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए, सीताराम का हाथ उन्होंने पकड़ लिया और सस्नेह अनुरोध के साथ उसे अपने पास बिठा लिया। दुबारा तालियों की गगनव्यापी आवाज़ गूँज उठी।

कल संध्या-समय की सभा का वह अजीब दृश्य-सेठजी-स्वयं रघुनाथ और सीताराम-व्याख्यानदाता का वह जोशीला भाषण...तीन जगत्‌ों के समन्वय से गांधीजी द्वारा एक नए जगत्‌ का निर्माण

‘माँ—माँ’ मोहन की यह प्यारी आवाज़ सुनकर रघुनाथ सीढ़ी से उठ खड़ा हुआ। ‘माँ, ताय बनाने तलो-तलो न—’ उसके तोतले शब्द उसे सुनाई दिए।

भीतर जाते हुए वह सोचने लगा, कल की सभा के विचारों में खो जाने के कारण आज अपनी शर्त का पालन वह न कर सका। अब नौद से जगने पर जानकी कुछ देर तो झूटमूट ही रुठने का अभिनय करेगी—शर्त वैसे बिल्कुल मामूली थी और दोनों में से किसी ने भी उस शर्तका आज तक भंग नहीं किया था। दोनों में से जो भी कोई पहले नौद से जाग उठे, वह दूसरे को जगा दे और पंछी जिस तरह अपने घोंसलों में कुछ समय तक मंजुल कलरव करने के बाद ही पेटपूजा के लिए बाहर निकलते हैं, उसी तरह एक दूसरे के गले से गला मिलाकर कुछ समय तक जी भर के मीठी मीठी बातें कर लेने के बादही दिन भर के कष्ट झेलने के लिए तैयार हो जाय, यही वह शर्त थी। प्रातः समय की वह प्यार भरी बातें ही रघुनाथ और जानकी के जीवन-संगीत की मधुर रागिनियाँ थीं। उनकी पाँच वर्ष की गृहस्थी में—विरहकाल के अतिरिक्त—इस कार्य में कभी

बाधा न आने पाई थी। लेकिन आज.....

रघुनाथ दबे पाँव भीतर गया। उसे आश्चर्य होने लगा कि मोहन की तोतली बोली सुनकर भी आज जानकी अब तक कैसे नहीं उठी। धीरे से मसहरी में घुसकर जानकी का बायाँ हाथ उसने चुपके से अपने हाथों में ले लिया। काँच की चूड़ियाँ अस्फुट मधुर स्वर में झंकृत हो उठीं। उन लज्जावर्ता बालिकाओं ने चुपकेसे, मंजुल स्वर में जो भी कहा, रघुनाथ का हृदय उसका आशय झट जान गया। जानकी का हाथ उसे फूलों से भी अधिक कामेल प्रतीत होने लगा। और उसकी हथेली पर के खरौंच ! इस वक्त जाने किस जादूगरनी ने उन्हें अदृश्य कर दिया था। रघुनाथ अपने होंठ उसके होंठों तक ले गया। मोहन जानकी के मंगलसूत्र से खेल रहा था। रघुनाथ ने सोचा, अगर मोहन ने उसका यह पागलपन देख लिया तो...वह अपने ही आप कुछ झेंप सा गया और बाद में मुस्करा दिया। फूलों के गिर्द मँडराती हुई तितली फूल को झट से चूम नहीं लेती ? ठीक उसी तरह उसके अधर.....

जानकी ने झट से अपना मुँह फेर लिया। रघुनाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा। कहा— ‘कहते हैं औरतें बड़ी चालाक होती हैं। भई, मानते हैं, यह बात बिल्कुल सच है।’

‘और कहते हैं, पुरुष बड़े ही निर्दयी होते हैं—यह बात भी बिल्कुल झूठ नहीं है’—उसकी ओर बगैर देखे ही जानकी ने कहा।

उसने मोहन के गाल से अपना गाल चिपका लिया। उसके सूने सूने से दिखाई देनेवाले गले की ओर देखकर उसने कहा— ‘आज मेरे मुन्ना की दूसरी सालगिरह है। लेकिन आपको याद भी है इस बात की ? आपको तो बस आपके सेठजी—गांधाजी की प्रतिमा.....’

उसने और कुछ नहीं कहा, सिर्फ निराश भाव से रघुनाथ की ओर एक कटाक्ष किया, मोहन को उठा लिया और वह मसहरी से बाहर निकली। लेकिन वहाँ से उठकर भीतर जाते हुए, एक बार पीछे मुड़कर देखे बिना उससे नहीं रहा गया। उस थिगलियाँ लगी मसहरी की आर दृष्टि जाते ही जानकी को एक तरह का विचित्र ही आभास होने लगा। उसने सोचा, उसकी जिंदगी भी इसी तरह छिन्न-विछिन्न है। स्थान स्थान पर उसमें पड़े छिद्रों में बार बार थिगलियाँ लगाना इतना ही उसका काम है—यही काम उसे करना पड़ेगा—आजीवन.....

इस आभास के कारण उसका धीरज टूट गया । अस्फुट कंठस्वर में वह सिसक पड़ी ।

उसने रघुनाथ की ओर देखा । वह सोच रही थी कि वह झट से उठकर मसहरी से बाहर आ जाएगा, उसे अपने निकट खींच लेगा उसकी पीठ सहलाएगा और रघुनाथ के सीने पर सर रख देने के बाद उसकी सब व्यथा-वेदनाओं का परिहार हो जायगा । यही भाव उसके उस दृष्टिक्षेप में निहित था । लेकिन रघुनाथ तो उसकी ओर शरारत भरी नज़रों से देखता हुआ मुस्करा रहा था । वहाँ से जाते हुए, तुनककर उसने कहा — ‘पुरुष पाषाण होता है यही सच है । स्त्रियाँ उस पाषाण को भगवान मानती हैं, उसकी पूजा करती हैं..... किंतु.....’

नित्य के अनुसार रघुनाथ ठीक आठ बजे दूकान गया उसकी ओर देखते ही, सामने के होटल से सिंगल चाय मँगाकर उसकी चुस्कियाँ लेने में लीन, बूढ़े मुन्शीजी ने कहा — ‘क्यों भई । आज कोई खास बात तो नहीं है ? बड़े खुश नज़र आ रहे हो ।’

मुन्शीजी के ये वचन सुनते ही लकड़ी में कपड़ा लपेटकर सामने का शीशा साफ़ करने में लीन पांडू चौंक पड़ा और उसने पाँछे मुड़कर देखा । अन्यथा बूढ़े मियाँ के कहने का आशय रघुनाथ की समझ में झट से न आता, लेकिन पांडू के एक ओर हट जाते ही शीशे में दिखाई देनेवाली अपनी परछाहीं की ओर देखते ही, उनके उस व्यंग का मतलब झट से उसनी समझ में आ गया । उसे कल की सब घटनाएँ सहसा याद हो आईं और वह अपने आप हँस दिया । कल इतना बड़ा समारोह हुआ । समारोह का आयोजन सेठजी ने किया था और इसी से, मानो अपने घर में ही व्याह हो रहा हो इस तरह, सब नौकरों का उस भैं हिस्सा लेना अनिवार्य हो गया था । मामूली नौकर पांडू । लेकिन वह भी कितने जतन से रखा हुआ अपना गुलाबी साफ़ा पहन कर फूलों की डलियाँ लिए यहाँ वहाँ इठला रहा था । लेकिन रघुनाथ की देह पर तो उसका वही पुराना मैला सा कोट था । वह अपना कोट बदलता भी कैसे ? इनेगिने दो ही तो कोट की उसकी गृहस्थी । कल शाम धोबी के पास दिया हुआ कोट लाने के लिए वह गया था,—लेकिन—कोई कहावत है न ! भला धोबी, सुनार, दर्जा ये लोग भी कभी ठीक समय पर अपना वादा पूरा करेंगे ? लड़के के व्याह में काम आनेवाला कोट

उसके जनेऊँ के समय जब इनके पास दिया जाय तब कहीं उसके उचित समय पर मिलने की संभावना ! लाचार हो, वही मैला कोट पहनकर कल के समारोह में उसे हिस्सा लेना पड़ा ।

यह बात किसी की नज़रों से नहीं छिपी थी । दो एक लोगों ने तो इस पर ताने भी कसे थे और आज उसकी देह पर भट्टी में धुला, साफसुथरा कोट देखने पर कोई उसका मज़ाक उड़ाए तो इस में अनुचित था ही क्या ? धोबी के पछि पड़, कल जानकी जाने कैसे वह कोट ले आई थी । जानकी ने जब देखा कि आज सबेरे वही पुराना कोट पहनकर वह दूकान जा रहा है, तब चुपके से इस कोट को हाथ में लिए, वह उसके सामने आ खड़ी हो गई और कहा,—‘मैंने कहा, आज अपने मोहन की सालगिरह है ।’

चुपचाप उसने मैला कोट उतार उसके हाथ में थमा दिया और वह कोट पहन लिया । दाढ़ी बनाने का भी वही ढंग ! उसने कल ही दाढ़ी बनाई थी और उसके नियम के अनुसार आज दाढ़ी बनाने की ज़रूरत नहीं थी । सेफ्टी रेंज़र के ब्लेड के दाम अत्यधिक बढ़ जाने से, रोज़ दाढ़ी बनाने की आदत को उसने छुट्टी दे दी थी । और हाँ, पुरुष की चुभनेवाली दाढ़ी से यदि किसी को तकलीफ़ उठानी पड़ती होगी भी, तो वह उसकी स्त्री ही को । फिर उसने आज दाढ़ी बनाई है, या बढ़ा रखी है, इस पर टीका टिप्पणी करने की अन्य किसी को क्या ज़रूरत ! पिछले वर्ष से वह हर तीन दिनों के बाद दाढ़ी बनाता है और पहले जो कोट हर हफ्ते धोबी के यहाँ धुलने दिया जाता था, वही अब पंद्रह दिनों के बाद दिया जाता है । इस तरह कुछ बचत कर लेने के कारण ही साताराम जैसे गरीब छात्र को—एक एक पाई का हिसाब रखनेवाली जानकी की चोरी से—वह सहायता स्वरूप माहवार एक रुपया दे सकता था ।

इस भेद को जानकी कभी जान भी न पाती और यदि जान पाती तो उसे वह बात कदापि पसंद न आती । लेकिन केवल निर्धनता ही के कारण स्वयं रघुनाथ मैट्रिक की परीक्षा में बैठ न पाया था, और उसी कारण आजीवन क्लर्क करने की आफत उसे उठानी पड़ रही है, तभी तो वह दूसरे का दुख....

इसी लिए आज वह दाढ़ी नहीं बनाना चाहता था; किन्तु जानकी भी कैसी होशियार ! चाय बनते ही, खौलता पानी लाकर उसने रघुनाथ के सन्मुख रख दिया । उस पानी से निकलने वाली भाफ़ की ओर वह चुपचाप देखता रहा ।

जानकी ने शीशा लाकर उसके सामने रख दिया — वह उसमें अपना मुँह देखता रहा — जानकी ने दाढ़ी बनाने की बाकी सामग्री लाकर उसके सामने पटक दी — रघुनाथ सोचने लगा, अब टालमटोल करने से काम नहीं चलेगा। वर्ना, कहीं ऐसा न हो कि अपनी यह धर्मपत्नी स्वयं ही पति की दाढ़ी बनाना शुरू कर दे... उसने चुपचाप ब्रुश से गालों पर साबुन लगाना शुरू कर दिया।

लेकिन यह सब इतिहास इस बूढ़े को किस तरह सुनाया जाय ? युवावस्था में स्त्री अपने पति को किस प्रकार और कितना चाहती है, इस बात का तो इन्हें अब स्मरण भी न रहा होगा और एक हरिजन छात्र की वह सहायता करता है यह बात मालूम हो जाने पर तो वे उसके स्पर्श से भी घृणा करने लगेंगे। किन्तु एक गरीब हरिजन छात्र को उसके द्वारा होनेवाली यह सहायता ही उसके जीवन का सबसे अधिक उज्ज्वल पहलू है। साताराम के हाथ में हर महीने एक रुपया देते समय वह असीम आनंद का अनुभव करता है। ब्याह के बाद, जानकी पहले पहल जब इस घर आई थी, तब सब की आँखें बचाकर उसने उसका पहले पहल चुंबन किया था, उस स्मृति की खुशी भी इस खुशी की बराबरी नहीं कर सकती। कभी नहीं ! ! आखिर यह तो आत्मिक संतोष है, शारीरिक नहीं। यदि गांधीजी को यह बात मालूम पड़ जाय कि कोई एक क्लर्क भी अपार श्रद्धा के साथ उनकी शिक्षा का पालन करता है तो.....

रघुनाथ वहाँ से निकला और तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की मंजिल पर गया। वहाँ से गांधीजी की मूर्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। लेकिन उस मूर्ति की पीठ दूकान की ओर थी। कल की सब मधुर स्मृतियाँ रघुनाथ के मस्तिष्क में चिड़ियों के उस झुंड के जैसी आकर विलीन हो गईं जो पलभर आँखों के सामने दिखाई देता है और दूसरे ही पल फुर से उड़ जाता है। स्मृतियों के उन चित्रों में जाने कब तक वह खोया रहता। लेकिन अकस्मात् सामने की अलमारी की ओर निगाह जाते ही उसका कलेजा धक् से हो गया। उसमें रखे इन्कमटैक्स के हिसाब के कागज़ तैयार करने थे। इन्कमटैक्स के ऑफिस में हिसाब भेजने का समय बिल्कुल समीप आ गया था। सेठजी तो केवल दस्तखत करने भर के मालिक हैं। चारों तरफ आँखें रखकर हिसाब जाँचनेवाले अफसरों की आँखों का काजल चुराना—सेठजी के कालेबाज़ार द्वारा उपार्जित धन का पता इन्कमटैक्स वालों को नहीं लगने देना यह काम तो सिर्फ रघुनाथ ही.....

उसने अलमारी खोली। हिसाब की बहियाँ निकालकर वह हिसाब जाँचने लगा; लेकिन जाने क्यों, उन बहियों में उसे बार बार गांधीजी की मूर्ति दिखाई देने लगी। रघुनाथ अपने आप से बार बार कह रहा था कि जाली हिसाब लिखना यह पाप है। यद्यपि यह पाप उसे सेठजी के लिए करना पड़ रहा था। फिर भी उसका उत्तरदायित्व तो — तुरंत उसने सोचा, यह पेट जो न कराए वह थोड़ा ही है।

वह विक्षुब्ध हो उठा और वहाँ से उठकर खिड़की से बाहर की ओर झाँकने लगा। इस ओर पीठ किए खड़ी गांधीजी की मूर्ति वहाँ से स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रही थी। उसकी आत्मा ने कहा—‘सत्य के पुजारी गांधीजी की इस प्रतिमा को यदि कानों ने सुनाई देता, तो बाज़ार की इन तिमंजिली इमारतों के पत्थर भी, उनकी आँखों के सन्मुख होनेवाले पापों की कहानी चीख चीखकर सुनाते और उसे सुनने पर, यह मूर्ति एक पलभर के लिए भी यहाँ न ठहरती — तुरंत यहाँ से भाग निकलती.....अपने इस विचार पर उसे हँसी आने लगी। लेकिन गांधीजी की मूर्ति प्रस्थापित करने में प्रधान भूमिका लेनेवाले सेठजी के जाली हिसाब की बहियों पर दृष्टि जाते ही वह दुबारा उद्विग्न हो उठा। वह बहुत देर तक दिमाग लड़ता रहा। लेकिन उस एक ही विचार ने उसे परेशान कर रखा था। इस दुनिया में कहीं न कहीं बड़ी भारी भूल अवश्य हो रही है। मनुष्य के जीवन—संगीत में सुमधुर, सुरीले स्वरों की अपेक्षा बेसुरा कर्कश राग ही अधिकतर सुनाई दे रहा है।’

सेठजी की मोटर का हॉर्न सुनाई देते ही रघुनाथ की विचारमालिका सहसा टूटी। वह तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरने लगा। इतने में सेठजी ही ऊपर आते हुए उसे दिखाई दिए। सहमकर वह एक कोने में खड़ा हो गया। सेठजी के ऊपर चढ़ आने पर, उनके पीछे पीछे अदब के साथ वह एक एक सीढ़ी चढ़ने लगा।

रघुनाथ के ऊपर आते ही सेठजी ने कहा—‘कल का समारोह तो बड़े ठाठवाट के साथ संपन्न हुआ। क्यों न ? अब कल के सब अखबारों में उसका पूरा हाल छपेगा —’

रघुनाथ ने गर्दन हिलाकर हाँ में हाँ मिलाई।

‘अब तुम्हें एक काम करना होगा। चार रोज़ हुए, रोशन का चचेरा भाई यहाँ आया है। आज दोपहर की गाड़ी से उसे वापस जाना है। उसके साथ

कुछ आम भेजने हैं। ऐसे बढ़िया अमा दिलादो कि देखते ही रोशन.....’—

जेब में हाथ डालकर सौ सौ के दो नोट सेठजी ने इस लापरवाही से निकालकर रघुनाथ के हाथ में रख दिए कि गोया वे कागज़ के टुकड़े ही हों। रघुनाथ हिसाब की बहियाँ अलमारी में रखने लगा। सेठजी ने कहा ‘—और सुनो, जाते समय अपनी कार भी साथ लेते जाना। रोशन का वह चचेरा भाई नाँचे दूकान में बैठा है। पहले आम खरीद लो और बाद में उसके साथ ही साथ तुम भी बंगले पर चले जाओ। तुम्हारे जाने में उसे बिस्तर वगैरह बाँधने में सुविधा हो जायगी।’—रघुनाथ ने अलमारी में ताला लगाया और वह नाँचे दूकान में जाने लगा। गुर्राकर सेठजी ने कहा —‘ सुनो ! पूरा सुन भी नहीं लिया ’ जा कहाँ रहे हो ! मेहमान को बिदा करने के लिए बारह बजे तुम्हों का स्टेशन जाना होगा। भोजन से निबटकर दोपहर जल्द ही चले आना। हिसाब तैयार करना है। जानते हो, इस समारोह ने अपने काम का कितना समय नष्ट कर दिया है ?’

मेहमान के साथ रघुनाथ बाज़ार गया। बढ़िया आमों की तलाश में मेहमान ने दो घंटे बरबाद कर दिए। जान पड़ता था कि वे आम के बड़े शौकीन थे। आपूस, पायरी, माणकूर इन किस्मों के बढ़िया आमों की दो टोक़रियाँ उन्होंने खरीदीं और इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से ऐसे भी आम खरीदे कि जिनका नाम तक रघुनाथ नहीं जानता था। आम का यह सौदा होते समय रघुनाथ को अचानक मोहन की याद हो आई। आज उसकी सालगिरह के लिए जानकी ने घर में कौन कौनसी चीज़ें बनाई होंगी ? मोहन को आम बहुत अच्छे लगते हैं। जानकी को भी अमरस बहुत पसंद आता है। क्या ही अच्छा होता कि आधी टोक़री पायरी आम, कल शाम ही वह घर ले जाता। लेकिन वह आम खरीदता भी कैसे ? आधी टोक़री आम का दाम तो कम से कम आठ नौ रुपये.....

दूकानदार ने मेहमान के हाथ में आम का बिल रख दिया। रघुनाथ ने देखा, एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने। पलभर रघुनाथ विमूढ़ की भाँति उस बिल की ओर एकटक देखता ही रहा गया और बाद में सेठजी के दिए दोनों नोट उसने दूकानदार के हाथ में थमा दिए।

मेहमान को बिदा कर रघुनाथ सर्किट में आया तब साढ़े बाहर का समय हो चुका था। प्रखर धूप में तेज़ी से चलने के कारण, उसके मुँह पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। परंतु उसे तो चिंता सिर्फ़ एक ही बात की थी। जिस दूकान

पर उसने मोहन की चेन बनाने को दी है, वह कहीं बंद न हो गई हो।

दूकान खुली ही है यह दिखाई देते ही रघुनाथ की सब थकान मिट गई। पसीना पोंछते हुए वह दूकान मालिक के सन्मुख आ खड़ा हुआ और मुस्कराने लगा। माथे पर लगाई ऐनक को नाक पर खींचते हुए दूकानदार ने उसकी ओर देखा और तुरंत दंत-प्रदर्शन करते हुए कहा—‘आईए, आपका ही काम पूरा कर रहा था।’

उसके हाथ में सोने की आठ चूड़ियाँ जगमगा रही थीं। सहमकर रघुनाथ ने पूछा—‘मैंने लड़के के लिए चेन बनाने दी थी। क्या वह अब तक नहीं बनी?’

‘देखिये न, बनती भी कैसे? आप ही के इस दूसरे काम ने बीच ही में अड़ंगा जो डाल रखा है। परसों के रोज़ रोशन बाई जी यहाँ आई थीं, नए फैशन की चूड़ियाँ बनवाने। उनकी चूड़ियाँ आज दोपहर में साढ़े बारह तक देने का वायदा कर चुका हूँ। फैशन ज़रा नया है इसलिए समय भी कुछ अधिक ही लग गया। अब आपकी चेन—रात में आठ बजे अवश्य दूँगा—ज़रूर आईए.....’

निराश होकर रघुनाथ घर की ओर चल पड़ा। कई दिनों से वह दिल में सोच रहा था की मोहन की सालगिरह के रोज़, दोपहर को चेन लेकर वह अपने घर जायगा और जानकी के हाथ में चुपचाप चेन रखकर उसे विस्मित कर देगा। और इसी से एक महीना पहले बनाने के लिए दी हुई चेन, दस बार तकाज़े करने पर आखिरी दिन भी न मिल सकी यह देख उसे मर्मांतिक व्यथा होने लगी।

दरवाज़े ही में जानकी उसकी राह देखती हुई खड़ी थी। उसकी हँसमुख सूरत देखकर रघुनाथ को विस्मय होने लगा। वह तो रास्ते भर सोचता आ रहा था कि इस सालगिरह के दिन भी मोहन के लिए कोई चीज़ न लाने के कारण आज जानकी अवश्य रुठेगी, उसके साथ बातचीत तक न करेगी। किन्तु उसकी अपेक्षा के विपरीत यहाँ जानकी के मुख पर तो स्निग्ध चाँदनी खिली है!

रघुनाथ सीधे भीतर जाने लगा लेकिन जानकी ने द्वार रोक रखा था। मुँह पर बनावटी गंभीरता धारण कर उसने कहा—‘बिना तलाशी दिए आप भीतर न जाने पाएंगे’। रघुनाथ की समझ में नहीं आया कि जानकी इतनी बातूनी कब से बन गई!

‘तलाशी?’ उसने पूछा।

‘ जी । तलाशी ’—

‘ किसके हुक्म से ? ’ उस मधुर परिहास में सम्मिलित होते हुए रघुनाथ ने पूछा ।

‘ युवराज के हुक्म से ’

‘ क्या मोहन ने तुमसे कहा है, कि हमारी तलाशी ली जाय ? ’

‘ जी — जी — जी ’

‘ क्यों भई, आखिर बात क्या है ? ’

‘ आज घर पर डाका गिरा है । ’

रघुनाथ उसकी ओर देखता ही रह गया ।

उफनते हुए दूध के समान अधरों पर प्रस्फुटित होनेवाली हँसी को कष्ट पूर्वक रोकते हुए जानकी ने कहा—

‘ मोहन की सोने की चेन कहीं पर खो गई है और एक ज्योतिषी जी ने बतलाया है कि वह आप ही की जेब में है । ’

कहकर जानकी ने उसकी दोनों जेबों में हाथ डाल दिए । बहुत देर तक वह जेबें टटोलती रही परंतु उसके हाथ कुछ न लगा । बाजी अपने पर पलटती देख, रुष्ट स्वर में उसने कहा—

‘ कहने लगे कि औरतें बड़ी चालाक होती हैं । लेकिन मैं कहती हूँ की पुरुष उनसे भी कहीं अधिक चालाक होते हैं । कहाँ छिपा रखी है वह चेन ? बताईए न—बताईए कहाँ है—बताईए भी—देखिए, वर्ना आज खाना न मिलेगा— ’

रघुनाथ ने कौतुहलवश पूछा— ‘ अच्छा, पहले तुम यह तो बताओ कि यह तुमसे किसने कहा कि आज मैं चेन लानेवाला हूँ ? ’

‘ आप ही के कोट ने । ’

अब कहीं रघुनाथ की समझ में सब कुछ आ गया । आज सबेरे, धोबी के यहाँ देने के लिए उसने जानकी के पास अपना मैला कोट भी दिया था । उस कोट में जल्दी के कारण वह चिड़ी रह गई थी, जिसमें सालगिरह के रोज़ चेन देने का सर्तफ़ ने वादा किया था ।

जानकी को निराश करते हुए रघुनाथ की प्रतीत होने लगा कि जैसे किसी ने असहनीय, पहाड़ सा बोझ उसके सीने पर रख दिया हो । फिर उसने सोचा, खट्टा दही खाना हो तो उस में कुछ चीनी जरूर मिलानी चाहिए । मुँह पर

बनावटी मुस्कराहट का प्रदर्शन करते हुए उसने कहा, 'चेन आज रात में आठ बजे मिलेगी। दूकानदार आखिर सुनार ही तो है—कहावत है न—' 'ये दसहूँ अपने नहीं, सूजी, सुआ, सुनार'

'अब छोड़िए भी इन बातों को। देखिए न, समय कितना हो गया है इसका कुछ ख्याल भी है आपको? मोहन तो सो गया। आपके पेट में दौड़नेवाले चूहों की आवाज़ मुझे यहाँ तक सुनाई दे रही थी और आप बैठे थे वहाँ कोई निराला ही राग आलापते।''

दूकान की घड़ी में मिनट बतानेवाली सुई जैसे जैसे आठ की ओर झुकने लगी, हिसाब की बहियों से रघुनाथ का ध्यान उचटने लगा। बही में लिखी संख्याओं के स्थान पर उसे किसी सुंदर, सोने की चेन की नाजुक कड़ियाँ दिखाई देने लगीं। बैठे बैठे वह चुलबुलाने लगा। किन्तु उसके सन्मुख बैठे सेठजी तो ध्यान में मग्न विश्वाभिन्न जैसे दिखाई दे रहे थे और उनकी बातचीत के ढंग से उसे संदेह होने लगा था कि वे और कम से कम दो घंटों तक यहाँ से उठने का नाम न लेंगे।

रघुनाथ विकल हो उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह यहाँ से छुटकारा पाया जाय। सर्राफ़ ने तो ठीक आठ बजे आने को कहा है। वहाँ जानकी मोहन से कहती होगी—'आज 'उनके' घर आते ही उन्हें एक मीठा मीठा चुम्मा देना भला! तुम्हारे लिए वे आज सोने की सुंदर चेन लाने वाले हैं।'—और यहाँ तो सेठजी आसन जमाकर बैठे हैं। तब तक सर्राफ़ की दूकान कहीं बंद न हो जाय। एक तो आज दोपहर में उसने जानकी को निराश किया है और अभी दुबारा... आखिर उसकी तो यह पहली ही ज़िद है। आज मोहन की दूसरी वर्ष-गांठ। आज ही चेन मिलने पर जानकी को जितनी खुशी होगी उतनी खुशी कल चेन मिलने से नहीं हो सकती। ब्याह के बाद बारातियों के आने से फायदा ही क्या।

वह सोचने लगा—'कुछ समय के लिए बाहर जाने की इज़ाज़त सेठजी से माँगूँ तो? लेकिन—लेकिन माथे पर बल डाले बैठे सेठजी की ओर देखते ही ज़बान हिलाने की उसमें हिम्मत न हुई। सहसा सीढ़ियों पर किसी की परछाईं उसे दिखाई दी। रघुनाथ ने नज़र उठाकर देखा। वह रोशन बाई का सेवक था।

आगे बढ़कर उसने सेठजी से कहा—'बाई जी ने आपको तुरंत बुलाया है।'

‘क्यों भई । कहीं बाई जी के सर वर में दर्द तो नहीं है ?’

हँसकर सेवक ने कहा—‘जी नहीं । नई चूड़ियाँ दिखानी हैं साहब को और वह कोई नया सिनेमा आया है न ? कहती थीं कि दस का खेल.....’—

सेठजी ने तुरन्त सब बहियाँ एक ओर हटा दीं । वे कवि नहीं थे । यदि उनसे कोई कहता कि कनक और कामिनी इन दोनों में, कामिनी में ही मात्राएँ अधिक होती हैं तो उस कथन का आशय भी वे समझ न पाते । फिर भी कामिनी का प्रभाव कनक पर चलता है इस बात का अनुभव आजकल वे बार बार कर रहे थे ।

सेठजी के जाते ही रघुनाथ को प्रतीत होने लगा कि, उसके सीने पर रखा हुआ बड़ा भारी शिला-खंड जैसे किसी दयालु व्यक्ति ने दूर ठेल दिया हो । बचपन में उसके पिता मंदिर में कथा सुनाया करते थे । उस समय गजेंद्र-मोक्ष की कथा वे अत्यंत रोचक ढंग से सुनाया करते थे । वह कथा रघुनाथ को अत्यंत प्रिय थी । उक्त कथा में गजेंद्र की सहायता के लिए, स्वयं भगवान विष्णु जब उतर पड़े थे उस समय गजेंद्र का हृदय आनंद से कितना परिपूर्ण हो उठा होगा इसका यथार्थ ज्ञान रघुनाथ को आज हुआ । उसने मन ही मन रोशन बाई को अनेकानेक धन्यवाद दिए ।

सेठजी के जाते ही रघुनाथ को भी घर जाने की तैयारी में देख बूढ़े मुन्शीजी ने नाक पर लगाई अपनी ऐनक को दो तीन बार नीचे ऊपर करते हुए, उसकी ओर घूरकर देखने हुए कहा ‘—क्यों जनाब । अभीसे ही कहाँ जाने की तैयारी हो रही है ?’

‘जी ? कुछ ज़रूरी काम है । अभी अभी पाँच मिनट में लौट आऊँगा ।’ उसने कहा ।

सावन महीने के आसमान की तरह किस्मत भी मनमौजी होती है इस बात का रघुनाथ आज यथार्थ में अनुभव करने लगा । आज सबेरे हर एक बात उसकी इच्छा के विपरीत हो रही थी । लेकिन अब भाग्य ने उसे सहायता दी थी । विश्वामित्र के समान तपस्या में लीन, आसन जमाए बैठे सेठजी को उनकी भेनका कैसे ठीक समय पर भगा ले गई ! सर्राफ़ की घड़ी ने भी पुरोगामी बनना स्वीकार न किया और सब से अधिक आश्चर्य की घटना तो यह थी कि सर्राफ़ ने नया वादा नहीं किया । उसे पंद्रह मिनट उसे दूकान में रुकना पड़ा बस ।

बिजली के आलोक में जगमगानेवाली उस नाजुक चेन को हाथ में लेते समय

रघुनाथ का हृदय हर्ष से प्रकंपित होने लगा। चेन देने के बाद सराफ़ ने उसका बिल भी उसके हाथ में रख दिया। रघुनाथ ने उसकी ओर देखा। एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने !

रघुनाथ चौंक पड़ा। तुरंत उसे हँसी भी आने लगी। आज सबेरे सेठजी ने रोशन बाई के भाई के साथ देने के लिए जो आम मँगवाए थे उनका भी बिल ठीक एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने हुआ था। इस विचित्र संयोग पर वह पल भर विस्मय करने लगा। तुरंत उसने बिल के रुपये दे दिए और दूकान की राह पकड़ी।

महीन, सुर्ख कागज़ में लपेटकर जेब में रखी उस चेन की ओर उसका बायाँ हाथ बार बार आकृष्ट हो रहा था। उसकी चित्तवृत्ति ठीक उस बालक के समान हो गई थी जिसे कोई सुंदर, नया खिलौना मिल गया हो। वह सोचने लगा, दूकान तो नौ के बाद बंद होगी और उसके बाद वह अपने घर जा सकेगा। और एक घंटा...छी ! छी ! और एक घंटे तक इस खुशी को वह जानकी से कैसे छिपाकर रख सकेगा ? क्या यही है जानकी पर उसका प्यार ! कभी किसी के यहाँ बरही में ज़रासी मिठाई मिलने पर उसके लिए उसमें से आधा हिस्सा जानकी किस तरह स्मरणपूर्वक निकालकर रखती है और वह.....

तेजी से वह दूकान में गया और बूढ़े मुन्शीजी से कहा ' - ददा, मैं घर जा रहा हूँ। नौ बजने पर आज आप ही दूकान बंद कर लीजिए। '

आँखें फाड़कर मुन्शीजी ने उसकी ओर देखा। ' मालूम होता है आज कोई खास बात है। ' यही भाव उनकी उस विचित्र दृष्टि में अंतर्हित था। पर उनकी उस दृष्टि की ओर नज़र उठाकर देखने के लिए भी रघुनाथ के पास अवकाश था ही कहाँ !

रास्ते पर आते ही वह सोचने लगा कि दौड़ते हुए जाने से वह बहुत जल्द अपने घर पहुँच सकता है। दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि यह तो सरासर पागलपन होगा। दौड़ते हुए जाने से कहीं ऐसा न हो कि पुलिस की निगाह उस पर पड़ जाय और उसे चोर समझकर उसका पीछा.....

तेजी से चलते हुए वह हठात् ठिठककर खड़ा हो गया। उसे संदेह होने लगा कि उसका पीछा करते हुए कोई दौड़ा दौड़ा आ रहा है। जेब में हाथ डाल कर उस में रखी चेन उसने जेब ही में कसकर पकड़ रखी और दुबारा तेजी से चलना शुरू

कर दिया ।

रह रह कर झिलमिलाने वाली बिजली की बत्तियों की रोशनी में गांधीजी की मूर्ति उसे स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी । अब कहीं उसके जी में जी आया । मूर्ति के ठीक सामने पहुँच जाने पर उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा । उसका पीछा करते हुए दौड़े दौड़े आनेवाले व्यक्ति की ओर निगाह पड़ते ही वह दंग रह गया । ...वह...वह तो सीताराम था...इतनी अबेर में...

कुछ आगे बढ़कर, सीताराम के निकट पहुँचकर उसने पूछा—

‘ क्या बात है सीताराम ? ’ जवाब के बदले सीताराम के कंठ से एक अस्फुट सिसकी निकल पड़ी और उसकी आँखें छलछला आईं ।

कल इसी स्थान पर एक देशभक्त ने अपने गले की पुष्प-माला निकालकर जिस सीताराम के गले में पहना दी थी, आज उसी स्थान पर उसे आसूँ क्यों बहाने पड़ रहे हैं इस समस्या ने रघुनाथ को पलभर उलझन में डाल दिया ।

उसकी पीठ सहलाते हुए रघुनाथ ने स्नेहसिक्त स्वर में पूछा— ‘ बताओ, बताओ न क्या बात है ? देहात में घर पर, कहीं तुम्हारी माँ तो बीमार नहीं है ! ’

सीताराम ने नहीं में सिर हिलाया ।—

‘ तुम्हारे छोटे भाई बहनों में से तो कोई— ’

‘ जी नहीं ! ’

‘ तब ? ’

शोक का आवेग कुछ कम पड़ जाने पर सीताराम ने अस्फुट शब्दों में अपनी लहानी कह सुनाई । परसाल ही उसके पिता का स्वर्गवास हुआ था । उन्होंने जो लर्ज़ ले रखा था उसका ब्याज तक न मिलने से घर पर कुर्की लाने का अधिकार नहाजन ने प्राप्त कर लिया था । चार बालबच्चों को लेकर दर-दर के भिखारी बनने की आफत आती देख सीताराम की माँ ने उसे इस घटना की खबर भेजी थी ।

मुख पर दीनता का भाव लाकर सीताराम ने कहा—‘ भैया, अब इस आपाति में तो बिना आपके— ’

रघुनाथ ने सामने की मूर्ति की ओर देखा । बिजली के आलोक में गांधीजी हँसते हुए दिखाई दे रहे थे । उसने सीताराम से पूछा— ‘ कितने रुपयों की जरूरत है तुम्हें ? ’

‘ एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने ’ इतना ही कहकर अभिलाषा भरी दृष्टि से वह रघुनाथ की ओर देखता रहा ।

रघुनाथ चौंक पड़ा । फिर वही संख्या ! उसने सामने खड़ी मूर्ति की ओर एक नज़र देखा । बत्तियाँ बुझ चुकी थीं और गांधीजी की मुद्रा अतीव श्रीहीन दिखाई दे रही थी ।

एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने । उसने सोचा, जब मैं रखी यह चेन ही सीताराम को दे दी जाय तो ?.....

लेकिन मोहन के लिए चेन लेकर आने वाले रघुनाथ की, उत्सुकता-पूर्ण नेत्रों से द्वार पर राह देखने वाली जानकी की प्रतिमा तुरंत उसकी आँखों के सम्मुख खड़ी हो गई । उसने सोचा, वह चेन तो मोहन की है । उसे सीताराम को दे देने का उसे कोई अधिकार नहीं । वह तो एक तरह से चोरी ही मानी जायेगी ।

इस विचार से उसके मन को संतोष प्राप्त हो गया । विद्युद्दीपों की पलकें बराबर खुल रही थीं, बंद हो रही थीं । बिजली की बत्तियाँ फिर जलने लगीं और प्रतीत होने लगा कि चौराहे में दो मनुष्य और एक प्रस्तर मूर्ति खड़ी है । और दूसरे ही क्षण बत्तियाँ बंद हो जाने पर जान पड़ने लगा कि उस चौराहे पर सिर्फ़ तीन पाषाण प्रतिमाएँ निःस्पंद खड़ी हैं ।

दो चार ही मिनट इस अवस्था में बीते होंगे लेकिन उतनासा समय भी, उन दोनों को चार युगों के जैसा दीर्घ प्रतीत हो रहा था । बाद में बातचीत का सिलसिला जारी रखने के लिए रघुनाथ ने पूछा—‘ तब तुमने क्या तय किया है ? ’

भर्नाए हुए स्वर में सीताराम ने कहा—‘ कर भी क्या सकता हूँ । माहवार एक रुपया खुशी से देनेवाले देवता इस गाँव में मुझे एक ही दिखाई दिए हैं । ऐसे कुछ बड़े आदमी भी हैं जो एक रुपया मुँह पर फेंक देते हैं लेकिन वह भी माथे में लाखों बल डालकर । रास्ते पर के किसी कुत्ते के सामने हम बासी रोटी का टुकड़ा नहीं फेंक देते ? ... ’ लेकिन तुरंत यह सोचकर कि ऐसा कहने में कुछ धृष्टता का आभास हो रहा है, उसने कहा—‘ सोचता हूँ कि अब स्कूल छोड़ कर देहू-रोड चला जाऊँगा और वहाँ पर कोई नौकरी कर लूँगा । शायद इसी से इस ऋण से मुक्त हो सकूँगा । ’

ये अंतिम शब्द सीताराम के मुख से अत्यंत शांत स्वर से निकले । उसके दिल में अब यही विचार प्रबल हो उठा था कि अपने हृदय के घाव दिखाकर,

उसे चाहने वाले इस सज्जन पुरुष के दिल पर चोट पहुँचाना उचित नहीं है। लेकिन घाव की मर्मांतक पीड़ा को अन्य किसी के सम्मुख हम प्रकट न भी करें तो क्या हुआ? उसमें से बहनेवाली रक्त की धारा तो किसी न किसी को दिखाई देगी ही। सीताराम की आँखों से अविराम गति से आँसू बहने लगे। रूँधे कंठस्वर में उसने कहा—‘ मेरा यह वर्ष मैट्रिक परीक्षा का वर्ष है भैया! पढ़ाई में बाधा न हो, इसलिए मैं माँ से मिलने भी नहीं गया... ’ उससे अधिक कहते नहीं बना। दूसरी ओर मुँह फेर कर वह अपने आँसू पोंछने लगा।

‘ मेरा यह वर्ष मैट्रिक का वर्ष है, भैया... ’

सीताराम के मुख से निकले इन शब्दों ने रघुनाथ के हृदय में प्रचंड आँधी सी उठा दी। आँधी के उन झकोरों के साथ उड़ कर, विगत कई वर्षों की स्मृतियाँ रघुनाथ की आँखों के सामने हठात् आ खड़ी हुईं। मैट्रिक के क्लास में पढ़नेवाला किसी निर्धन पुरोहित का एक लड़का उसे दिखाई देने लगा। पढ़ाई में वह लड़का बड़ा तेज़ था। संस्कृत भाषा पर उसका अच्छा प्रभुत्व था और काव्य से उसे असीम प्रेम था। उसके सब दोस्त और अध्यापक कहा करते थे कि भविष्य में यह लड़का संस्कृत का प्रोफेसर बनेगा; लेकिन उसी वर्ष उसके पिता यक्ष्मा के कारण खटिया से लग गए। स्कूल छोड़ना उसके लिए अनिवार्य हो गया। स्कूल छोड़ने के अनन्तर दो वर्ष बाद उसके पिता की मृत्यु हो गई...लेकिन दुबारा वह मैट्रिक की पढ़ाई न कर सका। भविष्य में संस्कृत का प्रोफेसर बननेवाला वही छात्र, अंत में किसी कपड़े की दुकान में क्लर्क बनकर.....

सामने खड़े व्यक्ति की ओर रघुनाथ गौर से देखने लगा। उसके सम्मुख हरिजन सीताराम नहीं खड़ा था। दस वर्ष पूर्व का ब्राह्मण युवक रघुनाथ उस स्थान पर उसे दृष्टिगोचर हो रहा था। उस रघुनाथ के शब्द भी उसे सुनाई दे रहे थे। वह कह रहा था—‘ रात की बारह की गाड़ी से मैं देहू-रोड़ जा रहा हूँ भैया। आपकी कृपा— ’ रघुनाथ निश्चल दृष्टि से सामनेवाली मूर्ति की ओर देख रहा था। कल के समारोह का संपूर्ण प्रभावी दृश्य उसकी आँखों के सामने खड़ा हो गया। सेठजी ने सीताराम को अपने निकट, जिस स्थान पर बिठलाया था, उसी स्थान पर उसकी दृष्टि अटकी रही। अचानक उसे प्रतीत होने लगा कि जैसे घोर अंधकार में सहसा चंद्रमा का उदय हो गया हो। उल्लासित स्वर में उसने कहा— ‘ सीताराम, भगवान गरीबों के सहायक होते हैं। वह दीनबंधु किसी न किसी

रूप में प्रकट हो ही जाएंगे। स्कूल छोड़ने की नौबत तुम पर हरगिज़ न आएगी। एक घंटे के बाद तुम मेरे घर चले आना।’

सीताराम के मुख पर छाए हुए चिंता के बादल पलभर में ऐसे बिखर गए जैसे किसीने जलते दीये पर उभरा हुआ गुल झटक दिया हो। रघुनाथ ने दृष्टि उठाकर मूर्ति की ओर देखा। बिजली के आलोक में गांधीजी मुस्करा रहे थे।

बिना किसी रुकावट के वह रोशन के बंगले में प्रविष्ट हो गया। किन्तु उसने जब कहा कि—‘मैं सेठजी से मिलता चाहता हूँ’ तब समस्त सेवक दुबिधा में पड़ गए। सेठजी और रोशन बाई के एकांत के बीच बाधा डालने की हिम्मत उनमेंसे किसी में भी नहीं थी। रघुनाथ ने सोचा कि अब बिना कोई बात बनाए काम नहीं बनेगा। उसने कहा—‘देखिए, दूकान का एक ज़रूरी काम है। यदि सेठजी से मेरी तुरन्त मुलाकात न हो पाई तो मुझे डर है कि उन्हें बड़ी भारी हानी उठानी पड़ेगी और बाद में सेठजी तुम लोगों को.....’

रघुनाथ के इतना कहने पर जान पर, खेलकर एक सेवक सेठजी के पास जाने को तैयार हुआ। कुछ ही क्षणों के बाद सेठजी ने रघुनाथ को भीतर बुलवाया—

अपने रंगमहल में नक्काशीदार पलंग के ऊपर सेठजी लेटे थे। वहाँ कदम रखते ही पहले पहल रघुनाथ का ध्यान आकृष्ट हुआ उनकी सुंदर कीमती मसहरी पर। अनजाने ही उसकी आँखों के सामने उसकी अपनी वह मसहरी आ खड़ी हो गई जिस में कई जगह थिगलियाँ लगी थीं। उस स्मृति के कारण वह कुछ उद्विग्न सा हो उठा। रोशन वहाँ पर सेठजी के लिए पान लगाने में व्यस्त थी। उसकी गुलाबी ज़रीदार साड़ी...जानकी के लिए एक मामूली गुलाबी धोती खरीदने के लिए रघुनाथ विगत दो वर्षों से कोशिश कर रहा था। किन्तु पति का पत्नी पर प्यार चाहे कितना ही क्यों न रहे, बाज़ार में उसे धोतियाँ मुफ़्त थोड़े ही मिल सकती हैं?—

रोशन ने पान की गिलौरी अपने हाथों सेठजी के मुँह में आहिस्ता से ठूस दी और पीछे मुड़कर उसने रघुनाथ की ओर देखा। उसके बाँए हाथ में जगमगाने वाली आठ चूड़ियाँ! मानो वे आठ नर्तकियाँ ही थीं। कुर्सी की ओर संकेत करते हुए रोशन ने रघुनाथ से कहा—‘बैठिये न—’

किन्तु सेठजी की कुद्ध मुद्रा देखकर रघुनाथ में इतना साहस न रहा कि वहाँ बैठा।

पीकदानी में थूककर सेठजी ने पूछा—‘क्या बात है? इतनी रात हुए दूकान

का क्या काम निकाला है ? कहीं हिसाब की बहियों में से कुछ खो तो.....’—
अंतिम शब्दों का उच्चारण करते समय उनके कंठस्वर से कुछ व्याकुलता का भाव प्रकट हो रहा था ।

‘ मैं—मैं ’ हिचकिचाते हुए रघुनाथ कहने लगा ।

‘ साफ़ साफ़ क्यों नहीं बताते क्या बात है ? ’ बिगड़कर सेठजी ने कहा ।

अब कहीं रघुनाथ को इस बात का ज्ञान हुआ कि तपस्या के भंग हो जाने पर कुपित हो उठनेवाले ऋषि के समान, कामुक पुरुष भी, उसके एकांत का भंग हो जाने पर किस तरह क्रुद्ध हो उठता है । लेकिन अब वहाँ से वह भाग भी नहीं सकता था । धड़कते हुए दिल से उसने कहा—‘कल वाला वह हरिजन लड़का—’

‘ वह लड़का जाय भाड़ में ! ’ सेठजी गरज पड़े । ‘ दूकान का क्या काम है झटपट कह डालो और चलते बनो यहाँ से— ’

‘ वैसे दूकान का तो कोई खास काम नहीं था सेठजी ! लेकिन— ’

‘ तब — तब तुम आए किसलिए हो यहाँ ? ’ यह कहते हुए कुपित होकर सेठजी उठकर खड़े हो गए — ‘ चोर — झूठे कहीं के..... ’

‘ कल वाला वह हरिजन लड़का बड़ी मुसीबत में फँसा है सेठजी । उसे कुछ रुपयों की जरूरत है— ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने । उतने रुपये मिलने पर उसकी ज़िंदगी बदल जायगी । वह ज़िंदगी भर आपका नाम ज़ेता रहेगा । ’

चार कदम आगे बढ़कर सेठजी ने कहा — ‘ रुपये क्या पेड़ में फलते हैं ? कहने लगे— ‘ ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ एक सौ सैंतीस रुपये आठ आने । तब तुम्हीं क्यों नहीं दे देते..... ? ’

‘ यह भी गांधीजी का काम है सेठजी । आपने मूर्ति के लिए इतना खर्च किया । गाँव की शोभा बढ़ा दी, इतने भारी व्यय में यह रकम कुछ... ’ सेठजी क्रोध से गरज पड़े—‘ ज़वान निकालकर मुझे ज्ञान सिखा रहे हो ? जानते भी हो, ढल के समारोह में मेरे कितने रुपये बरबाद हो गए ? वह सब कुछ क्या तुम्हारा ऋण देगा ? गधे कहीं के । बेमौके तुम आए ही क्यों यहाँ ? ऐसी बाहियात रकत दुबारा करोगे तो नौकरी से ख़ारिज कर दूँगा । याद रखना । ’

‘ किन्तु सेठजी, वह हरिजन लड़का— ’

सेठजी की आँखों के सम्मुख तो अप्सरा के समान सजधजकर बैठी रोशन

के साथ किए जानेवाले विषयभोग के चित्र नृत्य कर रहे थे। उन चित्रों के मुकाबले में रघुनाथ के ये शब्द इतने असंगत से मालूम हो रहे थे कि.....

उन्मत्त की भाँति वे रघुनाथ के ऊपर झपट पड़े। उनका हाथ खींचकर रोशन ने उन्हें अलग किया और वहाँ से चले जाने के लिए उसने आँखों द्वारा रघुनाथ को संकेत किया...

कितनी देर तक तो रघुनाथ को इस बात का ज्ञान तक नहीं था कि वह किस ओर जा रहा है। उसके मस्तिष्क में मानो कुहरा फैल गया था। जब वह कुछ प्रकृतिस्थ हुआ तब उसने अपने आप को चौराहे पर गांधीजी की मूर्ति के पास खड़ा पाया। नौ कब के बज चुके थे। मूर्ति पर लगाया विद्युद्दीप अब विश्राम कर रहा था। अंधेरे में गांधीजी के मुख पर की मुस्कान कतई दिखाई नहीं दे रही थी। मंद गति से रघुनाथ अपने घर की ओर चलने लगा। रास्ते में एक ही विचार से उसका मस्तिष्क व्याप्त था। उसने सोचा, अब अमावस का यह अँधेरा सारी रात इसी तरह उपद्रव करता रहेगा। आसमान में चमकने वाले हज़ारों नक्षत्रों की उपस्थिति में भी, केवल उन्हीं के बल यह अँधेरा उजियाले में बदल नहीं सकता। इस घोर तिमिर का विनाश तो तभी होगा, जब कि चंद्रमा का उदय होगा।

जानकी द्वार ही में उसके आने की ओर आँखें बिछाए खड़ी थी। रघुनाथ को देखते ही उसने कहा—‘राम राम। अब कहीं मेरे जी में जी आया...मैं तो कुछ का कुछ ही सोचने लगी थी। सोचा, कहीं अँधेरे में किसी चोर ने जेब से वह चेन.....’

यंत्रचलित की भाँति रघुनाथ का हाथ जेब में गया। उसने चेन की पुड़िया बाहर निकाली और निर्विकार मुद्रा से जानकी के हाथ में थमा दी। दौड़ती हुई जानकी भीतर चली गई। रघुनाथ भीतर प्रवेश कर भी न पाया था कि तब तक सोये हुए मोहन के गले में चेन पहनाकर रघुनाथ को दिखाने के लिए जानकी उसे बाहर उठा लाई। वह सोचती थी कि अब रघुनाथ उसके साथ कुछ मधुर परिहास करेगा। लेकिन उसने तो ज़बान तक नहीं खोली। जानकी विस्मय से दंग रह गई। भोजन के समय भी वही बात। रघुनाथ की प्रिय चने की दाल नए ही ढंग से उसने आज बना रखी थी। लेकिन ज्यों त्यों करके चार निवाले मुँह में ठूसकर, थाली से उठते हुए उसने कहा—‘आज तो बिलकुल भूख ही नहीं है।’ इस पर—‘आज कहीं भोजन का निमंत्रण तो नहीं था?’ इस जानकी

द्वारा अपेक्षित प्रश्न को टालने के लिए वही तुरंत बोल उठा—‘कल जो समारोह हुआ था, उसी के उपलक्ष्य में आज पार्टी थी।’

रघुनाथ हाथ मुँह भी नहीं धोने पाया था कि किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। जानकी दरवाज़ा खोलने के लिए जाने लगी किन्तु उसे रोक कर रघुनाथ ने कहा—‘तुम भोजन करने बैठ जाओ। मैं देखता हूँ कौन आया है।’ दरवाज़ा खोलने के लिए जाते समय रघुनाथ को ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे कोई फाँसी के तख्ते पर लटकाने के लिए उसे ले जा रहा है। बड़ी कठिनाई के साथ उसने दरवाज़े की साँकल खोली।

उसके सम्मुख सीताराम खड़ा था।

नीचे सर झुकाए रघुनाथ ने कहा—‘मुझे माफ़ कर दो सीताराम। मैं सोचता था कि गांधीजी ने तीन जगत्‌ों के समन्वय से एक नूतन जगत् की सृष्टि की है और इसी धारणा से मैंने तुम्हें सात्वना भी दी थी। लेकिन मैं मज़बूर हूँ। किसी ज़ुलम के जकड़े हुए हाथ दूसरों के पैरों की बेड़ियाँ काट नहीं सकते।’—

अवरुद्ध कंठ से सीताराम ने कहा—‘ना, ना भैया! ऐसा मत कहिए। मैं ग़ारह की गाड़ी से देहू रोड़ जा रहा हूँ। मुझे आशीश दीजिए भैया!’ यह कहते हुए, रघुनाथ के पैर छूने के लिए सीताराम झट से नीचे की ओर झुक गया।

रघुनाथ लपककर पीछे की ओर हट गया। उसका कलेजा मानो टुक टुक हो रहा था। व्यथित कंठ से उसने कहा—‘मैं तुम्हें किस मुँह से आशीर्वाद दूँ सीताराम? तुम ही मुझे शाप दो—हाँ, मुझे शाप दो—’

सीताराम ने चुपचाप उसके पैरों पर अपना माथा रख दिया और गर्दन ही के द्वारा उससे बिदा लेकर वह अँधेरे में अदृश्य हो गया।

अपने काम से निबटकर जानकी जब सोने के लिए भीतर आई तब रघुनाथ उसे शांत—चित्त सोता दिखाई दिया। दिनभर के परिश्रमों के कारण वह भी बेहद थक गई थी। बिछौने पर लेटते ही उसकी आँख लग गई।

किन्तु मध्यरात्रि के समय, वह सहसा चौंक कर नींद से जाग पड़ी। उसकी कमर में नहीं आ रहा था कि मोहन आज इस तरह क्यों सिसक रहा है। उसने आँखें खोलकर देखा। मोहन उसकी गोद में शांत—चित्त सो रहा था। तीण दीपालोक में भी उसके गले की वह चेन कितनी सुंदर दिखाई दे रही थी।

वह फिर आँखें बंद कर लेना चाहती ही थी कि इतने में उसे एक अस्फुट

रुदन-ध्वनि सुनाई दी ! रघुनाथ रो रहा था इसमें संदेह के लिए गुंजाइश ही नहीं थी । उसका रोना-जिसके कंधे पर मस्तक रखते ही उसके आँसू अनायास ही रुक जाते हैं उसकी...उसके जीवन-धन की वह सिसकी । वह भोली भाली बालिका सिटपिटा गई ।

आँसू बहाने वाली माता को खुश करने के लिए उसके गले से लिपट जाने वाले बालक के समान वह चुपके से रघुनाथ के निकट गई और उसने अपना गाल उसके गाल से आहिस्ता से चिपका दिया । रघुनाथ के गालों से होकर बहने वाले वे गर्म आँसू.....

रघुनाथ को इस बात की स्वप्न में भी आशंका नहीं थी कि जानकी अबतक जग रही है । जानकी ने रघुनाथ का माथा अपनी गोद में ले लिया और उसके बालों को धीरे धीरे सहलाते हुए स्निग्ध स्वर में पूछा '—क्या बात है, मुझसे नहीं बताओगे ? आखिर बात क्या है जो नन्हे बालक के जैसा यह रोना... '

' जानकी ! काश मैं नन्हा—अनजान बालक ही होता । तब इन दुःसह वेदनओं का मुझे तनिक भी ज्ञान न होता । '

इने गिने तीन प्राणियों की दुनिया में निवास करने वाली जानकी !! उस की तो यही दृढ़ धारणा थी कि दुख प्रायः शारीरिक ही होता है.....स्नेहसिक्त स्वर में उसने पूछा—' कहीं सिर में दर्द वर्द तो नहीं है ? '

रघुनाथ मुस्करा दिया । किन्तु आँसुओं से कलंकित उसकी वह मुस्कराहट जानकी को भीषण सी प्रतीत होने लगी । अब उसके दिल में अचानक एक दूसरी ही दुश्चिन्ता का उद्भव हो गया । मोहन के गले की चैन की ओर निश्चल भाव से देखते हुए उसने कहा—' कहीं इस निगोड़ी चैन की खातिर किसी से कर्ज तो नहीं लिया ? यही बात हो, तो इसे इसी वक्त लौटा दीजिए । पिता के गले में फाँसी का फंदालटकाकर पुत्र के गले में चैन पहनाऊँ ऐसी मैं कोई पगली तो नहीं हूँ । '

' पगली कहीं की ! ' बीच ही में उसकी बात काट कर रघुनाथ ने कहा ।

' तब आपको इतना रंज किस बात पर है ? '

' किस बात पर ? कैसे बताऊँ तुम्हें जानकी ?...मेरी...मेरी व्यथा...देह पर कहीं चोट पहुँची हो तो उसे मनुष्य किसी को दिखला भी सकता है.....

हृदय की चोट तो अपने प्रिय व्यक्ति को बिना बताए ही दिखाई देती है..... लेकिन जानकी, मानव की रक्त-रंजित आत्मा की वेदना-नहीं, जानकी नहीं। उस व्यथा का अनुभव तुम कभी न कर पाओगी। इस वाक्य को मैं बचपन से पढ़ता-रटता सुनता-आया हूँ कि यह संपूर्ण जगत् एक ही है-लेकिन जानकी, नहीं, यह जगत् अब एक नहीं रहा। उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले हैं मानव ने।'

तभी बारह की ट्रेन स्टेशन से छूटते समय बजनेवाली कर्ण-कटु सीटी की ध्वनि वातावरण में गूँज उठी।

सहसा रघुनाथ कह उठा-‘ सुनो. जानकी, सुनो। यह रेलगाड़ी भी चीख कर यही तो कह रही है। ’

विमूढ़ की भँति जानकी रघुनाथ के मुख की ओर देखती रही। उसकी आँखों में छलछलाने वाले आँसुओं को देखकर, उससे लिपटकर वह भी फूट फूटकर रोने लगी।

इसी समय सिनेमा देखकर सेठजी रोशन के बंगले पर वापस लौट रहे थे और इस बात की तनिक भी परवाह न करते हुए, कि आगे ड्राइवर बैठा है रोशन के साथ कामुक चेष्टाएँ करने में वे लीन हो गए थे और-और इसी वक्त नौकरी की तलाश में, रेल से देहूरोड़ जाने वाला सीताराम धीरे धीरे पीछे छूटनेवाले गाँव की ओर अश्रु-सिक्त नेत्रों से देख रहा था और अब भैय्या के दर्शन दुबारा कब होंगे इस विचार से मन ही मन छटपटा रहा था ! !



शिखर

प्रातःकाल के सूर्य की किरणें हँसती, किलकारियाँ मारती उदयाचल की ओर से बाहर आ निकलीं ।

पहाड़ की तराई में खड़े उस बालक के नेत्र उल्लास की दीप्ति से चमक उठे । पहाड़ का वह सबसे ऊँचा शिखर अबतक उसे किसी कमल की कली जैसा प्रतीत हो रहा था । वही कली अब अकस्मात् निद्रा का त्याग कर जाग पड़ी थी । प्रस्फुटित होनेवाली उसकी पँखुड़ियाँ अब मधुर गीत सुनाने लगी थीं । यद्यपि गीत के उन शब्दों का आशय किसी तरह उसकी समझ में नहीं आ रहा था फिर भी उसके मधुर स्वर शिखर की ओर आने के लिए उसे विमोहित कर रहे थे । चट्टानों पर, तेजी से छलांगें मारते हुए वह पहाड़ पर चढ़ने लगा ।

अचानक एक संन्यासी मुस्कराते हुए उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ । बालक भी वहीं ठिठक तो गया, किन्तु माथे में बल डालकर । संन्यासी के मुख पर अंकित वात्सल्य—पूर्ण स्मित की ओर देखने पर अपने क्रोध को शब्दों के द्वारा प्रकट करने का साहस उसमें न रहा ।

संन्यासी ने कहा—‘ वत्स ! प्रत्येक पथिक के लिए इस पर्वत के उस पार जाना अनिवार्य है । वहीं पर अखिल प्राणी—मात्र का विश्राम—धाम है । उसके गिर्द चक्कर लगाकर जाने वाली इस पगडंडी के मार्ग से होकर तुम भरे साथ चलो । यह मार्ग बीहड़ नहीं है, इस मार्ग में काँटे, कंकड़ नहीं हैं—टेढ़े भेड़े रास्ते भी नहीं हैं— ’

‘ और सामने की ओर दिखाई देने वाला वह लुभादना, सुनहला शिखर भी नहीं है, उस शिखर पर बैठकर मधुर गीत गाने वाली परी भी नहीं है... ’
अनादर सूचक ढंग से बालक कह उठा ।

संन्यासी के नेत्र आँसुओं से आर्द्र हो उठे। बालक ने सोचा, दुर्बल मन के मनुष्य ऐसे ही रोनी सूरत के होते हैं।

तेजी के साथ कदम बढ़ाता हुआ वह पहाड़ चढ़ने लगा। मानो कोई गेंद ही उछलते, छल्लों मारते हुए शिखर पर पहुँचने की चेष्टा कर रही हो।

मार्ग में एक टेढ़ी भेड़ी चट्टान से ठोकर खा कर वह पलभर लड़खड़ाया ज़रूर; किन्तु अपनी रक्त-रंजित उँगली का रक्त पोंछने के लिए भी वह नीचे नहीं झुका। बहनेवाली उस रक्त की धारा की ओर देखकर वह मुस्करा दिया और उसने अपने आप से कहा—‘कवियों के इस कथन में कोई संदेह नहीं है कि प्रीत का रंग सदैव लाल ही होता है।’

दृष्टि उन्नत कर उसने पहाड़ की उस चोटी की ओर देखा। अब उस परी के पंख दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। वह परी अप्सरा के रूप में परिणत हो चुकी थी। उसने परिधान किए महीन वस्त्र, वायु-वीचियों के साथ आँखमिचौनी खेल रहे थे। हीरे मोतियों के आभूषणों से सजधजकर, सुनहले शिखर पर खड़ी वह अप्सरा अपना वही अतीव मधुर गीत गा रही थी। उस गीत का भाव अब भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था लेकिन उन मधुर स्वरों में अब वह कुछ कुछ मादकता का अनुभव कर रहा था।

रक्तविंदुओं का सींचन करते हुए, उन महान चट्टानों की अर्चना करता हुआ वह पर्वत चढ़ने में व्यस्त था।

हठात् एक स्त्री उसके मार्ग के बीच आकर खड़ी हो गई।

दाँत पीसते हुए वह भी खड़ा रह गया। उस स्त्री के मुख की ओर उसने गौर से देखा। ओस में भीगे हुए फूल के समान उसकी आँखें दिखाई दे रही थीं...और उसकी केशराशि? समय को भी न जाने कैसा अजीब खिलवाड़ सूझा था। उसका केशकलाप ठीक उसी तरह दिखाई दे रहा था जैसे किसी जुलाहे ने काले और सफ़ेद तागों के सम्मिश्रण से किसी वस्त्र की बुनाई का आरंभ कर दिया हो।

करुण क्रंदन करते हुए उस स्त्री ने कहा—‘युवक! वापस लौट जाओ। तुम्हारा, मेरा, सबका विश्रामधाम इस पर्वत के उस पार है। इसी पर्वत की तराई से होकर वहाँ जनेके लिए एक मामूली सी पगडंडी है। लेकिन विमूढ़ की भाँति उस पगडंडी का परित्याग कर, इस सुनहले शिखर के मोह में फँसकर मैं दौड़ी दौड़ी

ऊपर की ओर चली आई। किन्तु वत्स ! यह देखो ! असामयिक दशा ही में मुरझाया हुआ मेरा यह यौवन देखो। मेरी ये भ्रम आशाएँ देखो '.....

युवक ने देखा, युवति के वस्त्र—जो किसी समय अत्यंत मूल्यवान थे आज चिथड़ों से भी बदतर हो गए हैं, उसके हाथों के कंगन टूट गए हैं, उसके भाल प्रदेश का कुंकुमतिलक मिट गया है और उस स्थान पर दिखाई दे रहा है केवल एक भद्दा सा दाग ! वह हँस दिया और मन ही मन में कहा—‘ कायर लोग इसी तरह रोनेधोने ही में अपना जीवन विनष्ट कर देते हैं । ’

मार्गस्थ होने के लिए उसने पैर उठाए किन्तु उसके कंधे पर हथ रख उस स्त्री ने उसे रोक लिया। उसका वह शीतल स्पर्श ! हठ त उसे अपनी माता का वह वात्सल्य—युक्त शीतल स्पर्श याद हो आया।

उसने अपने सम्मुख देखा। शिखरस्थ अप्सरा की सुंदरता प्रति—पल निखरती ही जा रही थी।

अपने कंधे पर रखे उस स्त्री के हाथ को बलपूर्वक झिझोड़ते हुए वह शिखर की ओर दौड़ने लगा।

सूर्य का प्रचंड उत्ताप अग्नि के समान उसकी देह को झुलसाने लगा, पैर रक्त रंजित हो गए, धूलिकणों से आँखें भर गई, कंकड़, कगारें मार्ग में विघ्न बाधाएँ डालने लगे, थकान के बोझ से पैर भर गए, मुँह सूखने लगा, कहीं पर भी जल दिखाई नहीं दे रहा था। वह निराश हो गया।

शिखर की चोटी पर बैठी वह अप्सरा अब हँस नहीं रही थी। वायु किसी पागल व्यक्ति के समान उन्मत्त हो, अटसंट बकती हुई शिखर के चारों ओर तांडव नृत्य कर रही थी। सूर्य की किरणें शिखर पर इस तरह दमक रही थीं मानो सैकड़ों तलवारें एक साथ जगमगा रही हों।

जब उसने अपना बायाँ पैर शिखर पर रखा उस समय उसकी देह कुम्हलाए हुए पुष्प के समान निष्प्रभ हो गई थी। शिखर पर बैठी उस अप्सरा की गोद में मस्तक रख विश्राम करने की लालसासे उसने दृष्टि उठाकर चारों ओर देखा।

उस संकीर्ण शिखर के गिर्द अपरिमित गहरी घाटियाँ ही उसे नज़र आने लगीं। उनमें से होकर मृग—जल की एक विशाल सरिता प्रवाहित हो रही थी। उसे आभास होने लगा कि मृग—मरीचिका की उस सरिता में वही अप्सरा जल—विहार कर रही है। प्रकंपित स्वर में उसने आवाज दी—

‘ प्रियतमे— ’

पर्वत की उन पाषाण राजियों में उस संबोधन की केवल कठोर प्रतिध्वनि गूँज उठी !!

अब पलभर के लिए भी खड़े रहने की शक्ति उसमें शेष नहीं थी। विश्राम के लिए वह उस शिखर का सहारा लेने लगा किन्तु उसे प्रतीत होने लगा कि जैसे पीछे की ओर से ठेलकर कोई उसे नीचे गिराने की चेष्टा कर रहा हो।

पीछे की ओर मुड़कर देखने की तीव्र लालसा दिल में निर्माण हुई। लेकिन उसके शरीर में उतना बल शेष नहीं था।

पार्श्व से, व्यंग्य भरी हास्य-ध्वनि उसे सुनाई दी। इसके अनंतर ही किसी को कहते हुए उसने सुना—‘ यहाँ तुम्हारा क्या काम है बूढ़े? क्या तुम जानते नहीं हो कि इस शिखर पर केवल एक ही व्यक्ति के लिए स्थान है? संकेत के द्वारा मुझे यहाँ आने के लिए प्रवृत्त करनेवाली वह अप्सरा तुम जैसे बूढ़े खूंसट के सम्मुख प्रकट होकर मेरा आलिंगन कैसे कर सकेगी? चलो-चलो-रास्ता नापो यहाँ से—’

उसे प्रतीत होने लगा कि जैसे शिखर के उस पार की अपारिमित गहरी कंदरा में उसे गिरा देने की कोई बराबर चेष्टा कर रहा है। अपनी आँखें उसने कसकर बंद कर लीं और हृदय-मेदी स्वर में वह चीख पड़ा—‘ बचाईए-बचाईए-मुझे कोई बचाईए— ’

नीचे की कंदरा से, संन्यासी का वही परिचित स्नेहसिक्त, कंठ-स्वर उसे सुनाई दिया—‘ वत्स ! डरो नहीं— ’

उसे आभास होने लगा कि जैसे किसी ने उसके कंधे पर आहिस्ता से हाथ रख दिया है।

आँखें खोलकर उसने देखा। उसे दिखाई दिया कि वही युवती—जो असामयिक दशहं में वृद्धा बन चुकी थी—उसकी कुम्हलाई देह पर आँसुओं का अभिषेक कर रही है। और मानो इस बात का विश्वास होकर कि शिखरस्थ अप्सरा की अपेक्षा यह वृद्धा ही अधिक सुंदर है—वह मुस्करा दिया।

दो नारंगियाँ

मृग नक्षत्र के आरंभ में जगमगाने वाले जुगनुओं के समान, बिजली के नीलिमा युक्त प्रकाश में रह रहकर आलोकित होकर मन को लुभाने वाले 'नया संसार' इन अक्षरों की ओर कवि एकटक देखता ही खड़ा रहा। उसे पल भर इन सभी बातों के जैसा विस्मरण हो गया कि वह किसी समाचारपत्र के कार्यालय के सम्मुख खड़ा है, वह पाँच रूपों के लिए मुहताज है, घर पर मलेरिया के ज्वर से कराहती हुई बीमार भानजी के लिए उसे बाज़ार से नारंगियाँ ले जानी हैं और नारंगियाँ किसी से उधार मिलनी असंभव होने के कारण, अपनी जेब में एक नवरचित कविता डालकर चिर परिचित संपादक महाशय से मुलाकात करने के लिए वह यहाँ आया है। उस मनोहर नीलिमा युक्त रोशनी की सुंदरता के नशे में वह जैसे अपनी सुधबुध तक खो बैठा।

उसके लिए यह बात अनोखी नहीं थी। कुछ दिनों पहले की घटना है; जब वह सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय जेल में ठूस दिया गया था, जेल के श्रेष्ठ कर्मचारी की आज्ञा का पालन न करने के अभियोग पर उसे कोड़ों की सजा दी गई थी। उसके सभी साथियों का ख्याल था कि उस पर कोड़े की पहली फटकार पड़ते ही वह इस प्रकार चीख उठेगा जैसे कसाई की छूरी गले पर चलते समय भेड़ चीख पड़ती है। लेकिन एक कोड़ा मारा गया—दूसरा कोड़ा उसकी पीठ पर पड़ा, उसकी पीठ पर सुर्ख रंग की चार पाँच बूँदें दृष्टिगोचर हुईं।...वह सहसा चीख पड़ा, 'वह देखिए—वह देखिए इंद्रधनुष।'।

नभोमंडल में, इस दिशा से लेकर उस दिशा तक दिखाई देनेवाला विशाल इंद्रधनुष उसके सम्मुख मुस्करा रहा था। मानो स्वर्ग में किसी विराट महोत्सव के उपलक्ष्य में, प्रवेशद्वार पर रंगबिरंगी सुंदर मेहराब की आयोजना की जा रही

थी। उस दिन कवि ने सोचा कि इंद्रधनुष ने ही उसकी लाज रख ली। वर्ना कोड़े की प्रत्येक फटकार के साथ वह किसी जानवर के जैसा...

छापाखाने के कलपुजों की खटखट की आवाज से कवि की क्षणिक तल्लीनता टूट गई। अपने इस चित्त-विभ्रम पर उसे हँसी सी आने लगी। तुरन्त उसे उसके बचपन की एक घटना याद आ गई। उसके मामा किसी दूसरे गाँव जा रहे थे। उसकी बड़ी बहन भी उनके साथ जा रही थी। कवि ने भी ज़िद ठान ली कि वह भी मामा के साथ जायगा। लाख रोनेबोने के बाद भी, अपना हठ पूरा होने की कोई संभावना नहीं है यह देखकर उसे एक चाल सूझी। उसने उसी क्षण सत्याग्रह शुरू कर दिया। दरवाजे के निकट ही कुआँ था। उस में पैर लटकाकर वह कुएँ के जगत पर बैठ गया। यह उपद्रव देख घर के सब लोगों के प्राण से सूख गए किन्तु वह तो कुएँ के गहरे, स्याह पानी की ओर देखता हुआ मन ही मन सोच रहा था—कि कुएँ में कूद पड़ने से सिर फट कर वह मर थोड़े ही जायगा? इस पानी के बीच, पातालपुरी की कोई न कोई अप्सरा अवश्य छिपकर बैठी होगी। उसके कूद पड़ते ही वह ऊपर ही ऊपर उसे अपने हाथों में उछाल लेगी और अपने साथ अथाह पातालपुरी में ले जा कर उसे वहाँ छिपा देगी और तब—'

‘क्यों कविराज?’ रास्ते में किसी ने कर्कश स्वर में आवाज दी। कवि ने मुड़कर देखा। आवाज देने वाले मनुष्य ने पिच से रास्ते पर थूँका और अपने मैले से दाँत निगोरकर अपना रास्ता पकड़ा।

कवि उसे तुरन्त पहचान गया। किसी गंदी सी गली में उसका चाय का होटल था। लड़ाई के पहले वह दाने दाने के लिए तरसता था किन्तु विगत तीन चार वर्षों से चाय में, चीनी के बदले गुड़ मिलाकर और दुकान के लिए मिलने वाली चीनी काले बाज़ार में ऊँचे दामों में बँचकर उसने अपना आसन दृढ़तापूर्वक जमा लिया था। कवि ने सोचा कि यह अच्छा ही हुआ जो बिना बातचीत किए ही उसने रास्ता नापा। कार्यवश वह उसके होटल में चाय पीने के लिए जाता था, और उसके कुछ पैसे भी तो उसे देने थे। यदि गर्प्पे लड़ाते हुए वह यहाँ खड़ा रहता तो यहीं—बीच रास्ते में, अपने पैसे मांगने में ज़रा भी न हिचकता!

चाय का बिल—नारंगियाँ खरीदने के लिए पैसे—

उसका कोट जो उसे अब कुछ कुछ छोटा होने लगा था उसकी बाईं जेब में

उसने हाथ डाला। कविता का वही कागज उसके हाथ लगा। उसने सोचा, यह कविता लेकर संपादक उसे पाँच रुपये खुशी से देगा। जिस वक़्त यह कविता उसने लिखी थी तब उसके आँसू रोके नहीं रुके थे।

ऊपर की ओर देखते हुए वह 'नया संसार' के कार्यालय की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

संपादक के कक्ष के बाहर लगी कॉलबेल बजाते हुए उसका हाथ कुछ कँपने सा लगा। माथे पर उभरे हुए स्वेदकणों को पोंछकर वह भीतर जा बैठा।

अपने बिखरे हुए केशों पर नज़ाक़त के साथ हाथ फेरते हुए संपादक ने कहा— 'कहिए कविराज! सुनाइए, क्या हाल है?' कवि ने चुपचाप जेब से कविता निकाली और उसे संपादक की भेज पर रख दिया।

संपादक ने उस कागज को उठा लिया और उसे खोलकर देखा। दो चार पंक्तियाँ भी उसने पूरी नहीं पढ़ी होंगी—उसने वह कागज भेज पर इस तरह फेंक दिया जैसे अपने बदन पर चढ़नेवाले किसी धिनौने की ड़े ही को किसीने झटक दिया हो।

सूखा धूँट पीकर कवि ने कहा—'कविता बहुत ही सुंदर है; ज़रा पढ़कर देखने का कष्ट—'

'किस विषय पर लिखी है?' सिगरेट का एक कश खींचते हुए संपादक ने पूछा—'रास्ता चलते हुए, भीड़ में जिस सुंदरी का स्पर्श हुआ उसके प्रति या अर्ध रात्रि में मालकंस आलापते हुए, रोनेवाले किसी मरियल स्नान के प्रति?'

बिना किसी प्रतिवाद के वहाँ से उठकर चुपचाप चले जाने को कवि का मन हुआ लेकिन ज़वर में कराहती हुई भानजी की मलीन मुख-मुद्रा उसकी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई।

घर से जब वह बाहर जाने निकला था, तब उसकी विधवा बहन ने आँखों में छलछलानेवाले आँसुओं को छिपाने के लिए झूठमूठ ही कहा था—'राम राम! धुआँ भी कितना हो गया है।' उन शब्दों का उसे सहसा स्मरण हो आया। मन में ऐसा ही कुछ कहकर कि—भूख की ज्वाला में मनुष्य को सर्व प्रथम अपने आत्म-सम्मान की आहुति देनी पड़ती है—वह चुपचाप कुर्सी पर बैठा रहा।

संपादक महाशय अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए और कवि की पीठ थपथपाकर उन्होंने कहा—'दोस्त। एक बात सुनो। बचपन में हम तुम एक ही स्कूल में

एक साथ पढ़ा करते थे। उस समय तुम्हारा नंबर अक्सर अच्वल रहता था। कई बार तो तुम्हारी कॉपी करने से ही मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हो सका। उस वक्त तुमने मुझ पर जो एहसान किए थे उन्हें मैं कभी न भूल सकूँगा और इसी लिए अब मैं तुम्हें एक ऐसा सुसखा बताऊँगा कि जिस पर तुम चले तो आदमी बन जाओगे। मेरे दोस्त ! जीवन की पाठशाला में कविता का मूल्य कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं है। यहाँ तो सिर्फ एक ही विषय की परीक्षा में उत्तीर्ण होना परम आवश्यक होता है। व्यावहारिकता। इस विषय में मैंने पहले नंबर से परीक्षा उत्तीर्ण की है। अब तुम मेरी कॉपी करो, तब देखना, जल्द ही मोटरों की सैर करने लगोगे, विहस्की पीने लगोगे—'

मेज़ पर रखे कागज़ के उस टुकड़े को उठाते हुए शांत स्वर में कवि ने कहा— 'मेरी इस रचना का नाम है 'बलिदान'। शरणार्थियों को भारत लेकर आने वाली किसी ट्रेन पर रास्ते में गुंडों ने आक्रमण किया। उसी गाड़ी से एक भाई अपनी दो सुंदर बहनों को साथ लिए भारत आ रहा था। अपनी इज्जत को खतरे में देख उन दोनों बहनों ने भाई से प्रार्थना की कि वह उन्हें मार डाले और उस भाई ने—'

कवि ने संपादक की ओर देखा। संपादक महाशय की मुद्रा गंभीर दिखाई दे रही थी। जी पर खेलकर कवि ने कहा—'मुझे पाँच रुपयों की आवश्यकता है। मेरी भानजी बीमार है। उसके लिए कुछ नारंगियाँ—यह कविता रख लीजिए और—'

अचल दृष्टि से कवि की ओर देखते हुए संपादक ने कहा—'यह समाचार तो कब का छप चुका है हमारे पेपर में।'

एकाएक कोने में रखे टेलीफोन की घंटी बजने लगी। तपाक से उठकर टेलीफोन की ओर जाते हुए संपादक ने कहा—'तुम हमारे संवाददाता बन जाओ कविराज ! किसी महाकाव्य की रचना करने पर भी जिदगी में तुम जितने रुपये कमा नहीं सकोगे उससे ज़्यादा रुपये कत्ल या व्यभिचार के किसी मुक़दमे का एक संवाद देकर पा सकोगे।'

कवि मौन रहा। फोन पर चलनेवाला वार्तालाप वह चुपचाप सुनने लगा। संपादकजी कह रहे थे—'क्यों दोस्त ! सुनाओ क्या समाचार है ?..... अशोक थिएटर में किसी डोरकीपर ने किसी स्त्री की बेइज्जती की ? क्या कहते

हो ? उसका हाथ पकड़ लिया ? ... सिनेमा में हमारे जो नए दोस्त हैं उनकी चिड़ियाँ का...या अल्ला ! बालासाहेब की वह नई परी ? ...अरे यार ! वे तो आज रात हमें उसी . सुनवाने वाले हैं ... अरे नहीं नहीं । ऐसा भी कभी हुआ है ? मैं कोई मूर्ख, अहमक थोड़े ही हूँ जो दोस्त का नाम अखबार में छाप दूँगा ?...बस यार, तुम देखते रहो । पहले ही पेज पर ऐसा शीर्षक दे दूँगा कि चुटकी बजाते ही पेपर बिक जायगा ! -लेकिन दोस्त, उस डोअरकीपर का नाम तो तुम्हें जरूर बताना होगा-वर्ना जैसा कि हिसाब के पन्ने में लिखा होता है, वैसा ही मैं छपवा दूँगा कि ' अ ' ने अँधेरे में ' ई ' का हाथ पकड़ लिया । ...क्या कहा ? जगमू ? कुछ दिन पहले हमारे यहाँ काम करता था वही जगमू ?... वह पाजी कपोजिटर ? अब तो हथकड़ा बन गया है न वह...खूब, भाई खूब । अरे यार ! इतना सा समाचार और उसके लिए दस रुपये ! तुम मी यार जुल्म करते हो ।...खैर । दस तो दस सही । लेकिन देखना, यह समाचार और किसी को मालूम न होने पाए-वर्ना... '

फोन का चोंगा नीचे रखकर संपादक महोदय शीघ्रतापूर्वक अपनी मेज के पास आ पहुँचे । उन्होंने झट से एक कागज निकाला और उसपर झटपट कोई समाचार लिख डाला । अब वे सोचने लगे कि उसे शीर्षक कौनसा दिया जाय । बहुत देर तक तो माथे में बल डाल कर और फौटनपेन की नोक होंठ से लगाकर वे चुपचाप सोचते रहे । सहसा उनके होंठों पर प्रसन्नता इस तरह प्रस्फुटित हो उठी मानो अँधेरी रात में विद्युलता चमक उठी हो । वे अपने आप ही कुछ कह उठे, उस संवाद पर शीर्षक लिख दिया ' -अँधेरी रात में रंगीले डोअरकीपर की काली करामातें ' और उसके नीचे झट दो मोटी सी लकीरें खींच दीं ।

घंटी बजाते ही एक लड़का दौड़ता हुआ भीतर आया । संपादक ने वह समाचार उसके हाथ में दे दिया । जैसे ही वह लड़का बाहर जाने लगा, कवि की दृष्टि उसकी कमीज़ में लगे भद्दे पैबंद पर पड़ी ।

दूसरी सिगरेट जलाकर संपादक ने कहा- ' सुन लिया न दोस्त ? अशोक थिएटर में किसी डोअरकीपर ने अँधेरे का नाज़ायज फायदा उठा किसी छैल छबीली के कंधे पर हाथ रख दिया । ओफ ! यह तो अच्छा ही हुआ कि किसी दुर्घटना में उसके दाहिना हाथ नहीं रहा था । वर्ना वह बदमाश उसका आलिंगन

करने से भी बाज़ न आता । कुछ क्षण टहरकर उन्होंने कहा—‘ वैसे देखा जाय तो इस संवाद में कौनसी अनोखी बात है ? विश्वामित्र के जमाने से लेकर आज तक—बड़े बड़े महर्षि तक यही भूल करते आए हैं । लेकिन भैया । आखिर यह दुनिया तो दीवानों का बाज़ार है । इस बाज़ार में तुम्हारे काव्य का कोई मूल्य नहीं । यहाँ तो बस इस प्रकार के संवादों का ही भाव तेज़ी पर है । इस सनसनी खेज संवाद के लिए मुझे अभी अभी दस रुपये देने पड़े । पर देखना, इन्हीं दस रुपयों में दो दिन के अंदर ही अंदर मैं आसानी से सौ रुपये ऐंठ लूँगा । यह प्रेस, यह विशाल इमारत, वह गन्ने की खेती—पंद्रह बीस वर्षों में मैं लाख दो लाख का मालिक बन बैठा हूँ । और तुम ? तुम तो बस अबतक आकाश के तारे ही गिनते बैठे हो । ’

अपने बचपन के साथी के प्रति संपादक के हृदय में फिर प्रेम के भाव उमड़ते दिखाई देने लगे । अपनी कुर्सी से उठकर एक हाथ कवि के कंधे पर रख उन्होंने कहा—‘ दोस्त, जिंदगी एक बाज़ार है । इस बाज़ार में पूजा तो सिर्फ़ धन ही की होती है । आदर्शों की, सुंदरता की, मनुष्यता की या अन्य किसी भी चीज़ की अर्चना यहाँ कोई नहीं करता । मैं हैरान हूँ कि अब तक यह बात तुम्हारी समझ में क्योंकर नहीं आती ? आज तुम पाँच रुपयों के लिए मुहताज हो और मैं...खैर, छोड़ो भी इन बातों को । अब इस संवाद को कुछ बढ़ाचढ़ाकर मैं अपने पेपर में किस तरह खैर, यह तो तुम पढ़ोगे ही और तब तुम्हारी समझ में आएगा कि... ’

संपादक दुबारा अपनी कुर्सी पर आरुढ़ हो गए । लौकिक सफलता प्राप्त करने वाला हर एक व्यक्ति अपने आप को महान् समझने लगता है । अन्य किसी को उपदेश देने का अवसर पाकर इस प्रकार के व्यक्ति प्रसन्न हो उठते हैं । संपादक भी उसी उन्मादक अवस्था में थे । उन्होंने कहा—‘ सिनेमा के कारण समाज का कैसे पतन होता है इस पर कल ही परसों चार पाँच कॉलम का एक अग्रलेख मैं लिखने वाला हूँ । तुम बस देखते ही रहो !! ’

‘ लेकिन आप तो स्वयं सिनेमा के बड़े शौकीन हैं ? ’ कवि ने कहा ।

‘ जी हाँ, हूँ तो सही । लेकिन इस बात से उस बात का क्या वास्ता ? भेरे भाई ! यह सब कुछ जनता के लिए है । उस लेख के छपने पर दो तीन दिनों के बाद ही ‘ हमारे विशेष संवाददाता की ओर से ’ इस शीर्षक से इस जगहू की पोल में खोल देनेवाला हूँ । ... हमारे यहाँ वह कंपोज़िटर था तब बड़ी बड़ी

डींगे हाँकता था ... खट्टर के कपड़े भी पहनता था । और जानते हो, वह यहाँ से किसलिए चला गया ? इसलिए कि हमारे पेपर में गांधीजी पर कटु आलोचनाएँ छपती थीं । उस ज़माने में गांधीजी का मज़ाक उड़ाना यह एक मामूली सी बात थी । ऐसी हरकतें उस ज़माने में लोग बरदाश्त कर लेते थे । बाद में, सन बयालीस के आंदोलन के बाद जनता उनकी तारीफ़ के पुल बाँधने लगी । बस, हम भी गांधीजी की सराहना करने लगे । यह तो समय का फेर है भाई ! अब कालचक्र ने दुबारा पलटा खाया है, बस हमने भी उस बूढ़े के खिलाफ़ तूफ़ान बरपा कर दिया— ’

संपादक ने देखा कि उनकी बात की ओर कवि का ध्यान नहीं है — तो अपना भाषण वहीं पर समाप्त कर दिया । कहा — ‘वाह भाई ! मैं तो भूल ही गया । दस बजे गाना सुनने जाना है — ’ तुरंत दाहिने हाथ से उन्होंने अपनी टोपी उठा ली ।

उन्हें उठते देख कवि भी उठ खड़ा हुआ । उसने पूछा — ‘क्या आपके पत्र द्वारा गांधीजी का मज़ाक उड़ाया जाता है इसी बात पर जगगू ने आपके यहाँ की नौकरी छोड़ दी ? ’

तिरस्कार भरे शब्दों में संपादक ने कहा — ‘नौकरी छोड़ दी तो हमारी बला से ! यह तो अच्छा ही हुआ जो यहाँ से वह चला गया । वरना ऐसे कंपोज़िटर्स के कारण कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन हमारा पेपर ही बंद हो जाए । आज-कल मेरे यहाँ जितने भी लोग हैं, सब के सब समझदार हैं । चाहे जो भी लिख दो, चुपचाप कंपोज़ कर डालेंगे । बिना किसी प्रतिवाद के उसे छाप देंगे—हाँ, उन्हें पहली तारीख के रोज़ तनखाह मिल गई कि बस । उन्हें तो सिर्फ़ रुपये से मतलब— ’

इस डर से कि रुपये का नाम सुनकर कहीं कवि को दुबारा रुपये का स्मरण न हो जाय, बातचीत का रुख बदलकर संपादक ने जल्दी में कहा — ‘अच्छा तो सुनो प्यारे । गाना सुनने के लिए दस बजे तुम भी चले चलो । आओ भी यार ! उसमें लजने शरमाने की कौनसी बात है । मैं—हमारे डॉक्टर और सिनेमा कंपनी के हमारे नए दोस्त बालासाहेब सब वहीं पर मिलेंगे । सोचो तो, कैसा शुभ अवसर आया है तुम्हारे लिए । आज की मजलिस में बालासाहेब को ज़रा खुश कर दो कि बस ! — उनके आगामी चित्र में गीत लिखने का काम

तुम्हें ही मिल जाएगा और वहाँ के वहाँ छनाछन सौ दो सौ रुपये एडवान्स भी बैठे बिठाए तुम्हें मिल जायगा। कहो तो फिर, पक्की रही न बात ?'

हाँ मैं गर्दन हिलाकर कवि ने मौन-स्वीकृति कब दे दी यह उसे ज्ञात भी न हो पाया। संपादक ने सुस्कराते हुए उसके कानों में बालासाहब का पता बताया और कहा — 'देखो, ठीक दस बजे ! भूलना मत'—। इतना कहकर वे अन्यत्र चले गए।

रास्ते के मोड़ पर किसी होटल में लगी घड़ी में कवि ने देखा। अभी तो केवल नौ ही बज रहे थे। और एक घटे का समय उसे व्यतीत करना था। वह सोचने लगा कि तब तक घर क्यों न हो आए—तुरन्त भानजी की म्लान मुद्रा का उसे स्मरण हो आया। घर जाने पर यदि वह पूछे कि—'मामा, नारंगियाँ कहाँ हैं'—तो वह क्या जवाब देगा ? अन्य चीजें न भी मिलें तो कोई हर्ज नहीं पर कम से कम दो नारंगियाँ तो घर ले जानी ही होंगी। उसने सोचा कि यह अच्छा ही हुआ जो गाना सुनने के निमंत्रण को उसने स्वीकार किया। सौ, दो सौ रुपये तो दूर रहे, अगर उस बालासाहब ने पाँच रुपये भी आज उसे दे दिए और आधी रात में उठकर बागवान उसे दोठो नारंगियाँ दे सका तो क्या ही अच्छा होगा। इस तरह तोचता हुआ, जिस ओर उसके पैर बढ़े, उसी ओर वह जाने लगा।

अब वह राजपथ पर आ पहुँचा था। दोनों ओर के होटल मानो सजधजकर गीत गा रहे थे, अटखेलियाँ कर रहे थे। उस दृश्य को देखकर कवि को आभास हुआ कि, किसी शादीघर में अपने रूप-यौवन और साज-शृंगार का प्रदर्शन करते हुए यहाँ वहाँ इठलाने वाली प्रमदाओं के मेले से होकर ही वह जा रहा है। चलते हुए एक होटल के सामने वह खड़ा रह गया। एकाएक उसे स्मरण हो आया कि उस भव्य, विशाल, तिमंजिली इमारत का स्वामी भी, संपादक के जैसा ही उसका एक सहपाठी है। कवि के मस्तिष्क में अनेक स्मृतियाँ एकसाथ जाग उठीं। पढ़ाई में वह व्यक्ति कवि से कुछ सुस्त ही था। पर उसकी पारिवारिक अवस्था कुछ अच्छी थी। अंग्रेजी की छठी, सातवीं कक्षा से ही कवि को कविता पढ़ने और पनाने का शौक चर्चा गया। इसी कारण पढ़ाई में उसका दिल उचट सा गया। जैसे तैसे कर के कवि ने मैट्रिक तो पास कर ली पर अब स्कॉलरशिप प्राप्त कर, भविष्य में कॉलेज की पढ़ाई पूरी करना उसके लिए

असंभव था। मैट्रिक होते ही वह स्कूल—मास्टर बन गया। उसके बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के कारण जेल में और जेल के बाहर उसके सात आठ वर्ष बरबाद हो गए। इस दीर्घ अवधि के बीच वह भला आदमी एल.एल.बी. पास कर तहसीलदार बन गया था। तहसीलदारी के पाँच सात वर्षों में उसने अपना यह तिमंजिला विशाल भवन बना लिया था। लोग हमेशा कानाफूसी करते कि वह रिश्वत खाता है। जो भी हो, आज तो वह बैठे बिठाये इस इमारत का पाँच सौ रुपया किराया पाता होगा। और वह ? वह तो पाँच रुपयों के लिए भी मुहताज है। ज्वर में बेहोश उसकी भानजी प्याली भर नारंगी के रस की प्रतीक्षा में उसके घर आने की ओर आँखें लगाए कराह रही होगी। किसलिए—किसलिए ऐसे नीरस तथा कंगाल जीवन को उसने स्वीकार किया ? कविता, देशप्रेम, सचाई ! केवल इन्हीं के बल पर तो दुनिया में मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। बेइमानी से जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति ही इस दुनिया में चैन की बंसी बजा सकता है, क्या यही उस बदमाश संपादक के जीवन का सार नहीं है ? उसने जो कहा था वही सब है—‘ ज़िंदगी एक बाज़ार है। इस बाज़ार में उसका मूल्य— ’

कवि अपने आप पर झुंझला उठा। रह रह कर उसे दृढ़ विश्वास होने लगा कि शराबी के जैसा ही आदर्शवादी व्यक्ति का भी जीवन माटियामेट हो जाता है। सड़क की दोनों ओर उसने ग़ौर से देखा। रास्ते के मोड़ से, एक से एक बढ़कर शानदार मोटर गाड़ियाँ नर्तिकियों जैसी इठलाती, बलखाती जा रही थीं। रंगबिरंगे वस्त्रों से विभूषित, केशों में सुंदर फूलों के गजरे डाले, युवतियाँ अपने अपने पति के साथ सिनेमाघर जा रही थीं। सामनेवाले होटल में, दूसरी मंज़िल पर दाहिनी ओर के कमरे में भोजन पर सजाकर रखे मद्यपात्र चमाचम चमक रहे थे।

कवि ने सोचा, इन लोगों ने अपने जीवनोद्यान में मामूली फलफूलों के वृक्ष लगाए और एक वह था जो अपने जीवन के उद्यान में स्वर्ग का कल्पवृक्ष लगाने की असफल चेष्टा करता रहा। आज उनके कंठ पुष्पमालाओं से विभूषित हैं और उसके मस्तक पर है केवल काँटों का मुकुट !! उनके सन्मुख चांदी की तश्तरीओं में तरह तरह के रसीले फल रखे हैं और उसकी थाली में है केवल मिट्टी ! हाँ, मिट्टी !

उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके माथे पर कोई हथौड़े से अविराम गति से प्रहार कर रहा है। बड़ी देर तक तो किसी प्रस्तर—मूर्ति के समान आँखें बंद

किए वह रास्ते की एक ओर खड़ा रहा ।

आँखें खोलकर उसने देखा ।

वारांगनाओं की सदृश सुसाजित वहाँ के विलास-मंदिर अपने विद्युद्दीपों के नेत्रों-द्वारा राहगीरों को आकर्षित करनेके लिए कुछ समय पहले जैसे ही कामुक संकेत कर रहे थे । मनोविनोद के लिए अपने घर से बाहर निकले हुए लोग अपने बनाव-सिंंगार एवं संपात्ति का प्रदर्शन करते हुए उन विलास-मंदिरों के भीतर प्रविष्ट हो रहे थे-भीतर से बाहर आ रहे थे । बौतलें खोलने की विभिन्न आवाजें-मसालेदार चटपटी चीजों की सार्भमश्र सुगंध-प्याली तश्तरियों की खड़-खड़ाहट-चूड़ियों की मधुर शंकार ... फबतियाँ कसने पर होनेवाली हास्य की खिलखिलाहट...कवि ने यह सब देखा-सुना और उसका अनुभव भी किया ।

उसकी विद्रोही आत्मा सहसा जाग उठी । उस राजपथ का ऐश्वर्य उसे बहु-मूल्य वस्त्रालंकार से विभूषित, गलित कुष्ठ से पीड़ित किसी रोगी के समान प्रतीत होने लगा । अधर्म की नाँव पर खड़ी, भोगविलास की उस बीभत्स सामग्री से उसे घृणा होने लगी । शीघ्रता से कदम उठाता हुआ वहाँ से वह अग्रसर हुआ और दाहिनी ओर मुड़ा । इस रास्ते पर टिमटिमानेवाली म्युनिसिपालिटी की बत्तियाँ कहीं कहीं दिखाई दे रही थीं । उस धुंधले से प्रकाश में कवि ने एक मंदिर देखा । उस मंदिर के द्वार पर वह जा खड़ा हुआ । उसकी आहट पाते ही मंदिर के प्रांगण में, देह की गठरी बनाए लेटा हुआ कोई भिखारी खट् से उठ बैठा और वहीं से उसने आवाज दी ' -अंधे को एक पैसा दे दो दाता ! '

उसे एक पैसा देने की आंतरिक इच्छा होने पर भी कवि उसे पैसा न दे सका । उसकी जेब में तो कविता के उस कागज के सिवा और कुछ भी नहीं था । दबे पाँव वहाँ से वह खिसक गया और अपनी तन्त्रा में ही आगे बढ़ा ।

टहलते टहलते उसे अचानक संपादक के निमंत्रण की याद हो आई और वह वहाँ जा पहुँचा जिस स्थान का उसे पता दिया गया था । बंगले के सामने कुछ क्षण खड़े रहकर उसने आहट ली । गाने के स्वर अभी सुनाई नहीं दे रहे थे ।

अदब के साथ उसने भीतर प्रवेश किया । संपादक, डॉक्टर और बालासाहब गप्पें लड़ा रहे थे । कवि को देखकर संपादक ने उसे बैठने के लिए इशारा किया । बालासाहब कह रहे थे ' - यह तो मेरा सौभाग्य ही समझो कि थिएटर में श्रेवती गश खाकर गिरी नहीं । जो भी हो, आखिर था तो वह पर पुरुष क

स्पर्श ! और उस पर जगमू की वह डरावनी सी सूरत ! कटा हुआ हाथ, पिचके हुए गाल, गढ़े में धँसी आँखें ! एक एक आदमी भी कैसा अजीब होता है । सूरत तो छलुंदर की जैसी—और उल्लू का पट्टा चला था मुहब्बत करने । वह भी किससे ? जो स्वप्न में भी उसकी ओर नज़र उठाकर न देखे, ऐसी नाजनीन से । बंबई में इस लड़की को प्राप्त करने के लिए मुझे क्या क्या आफतें उठानी पड़ी यह तो बस मैं ही जानता हूँ । ’

इस पर डॉक्टर साहब ने कहा — ‘ आप कुछ भी कहिए बालासाहब । वह जगमू यह शरारत जरूर नशे ही के बीच कर बैठा । कुछ ही दिन हुए वह मेरे यहाँ ड्राईवर था, तब मोटर का कितना बड़ा ऐक्सिडेंट कर दिया था गधे ने । यह तो ग़नीमत समझो कि उस दुर्घटना का शिकार खुद उसे ही होना पड़ा और उसका एक हाथ टूट गया । पिछली सीट पर मेरे साथ मेरी नर्स बैठी थी । अगर हम में से किसी का हाथ पैर टूट जाता..... ’

‘ तब तो किसी का आलिंगन करना भी आप के लिए मुश्किल.... ’ संपादक एकदम से बोल उठे । परन्तु कवि की ओर ध्यान जाते ही बात बदलकर उन्होंने कहा ‘ — मेरा मतलब—ऑपरेशन करने में—आप जैसे कुशल डॉक्टर का हाथ यदि टूट जाता—तो... ’

उनकी बात काटकर डॉक्टर ने बालासाहब से कहा ‘ — गाना ज़रा जल्दी शुरू करने के लिए रेवती बाईजी से कहा जाय तो—क्योंकि श्रीमतीजी से कह आया हूँ कि प्रसूती का एक केस है..... ’

कुर्सी से उठते हुए बालासाहब ने कहा ‘ — अरें यार, हटाओ भी ! कह देना बच्चा आड़ा आ गया था । बस ! सब मामला खतम । ’

कुछ ही क्षणों में बालासाहब भीतर से बाहर आ गए । उनके पीछे पीछे दरवाज़े पर लगा पर्दा हटाकर लगभग बीस वर्ष की एक युवती भी कक्ष में प्रविष्ट हो गई । वह ज़रीदार साड़ी पहने थी । उसके बदन पर विभिन्न आभूषण जगमगा रहे थे । उसका केश-विन्यास अत्यंत आकर्षक था । यह सब देखते देखते कवि की दृष्टि उसकी आँखों पर जा गड़ी । उन आँखों को देखकर न जाने क्यों कवि को आँसू याद आने लगे । उसकी वह निस्तेज आँखें और उनमें अंतर्निहित उदासीनता का भाव उसके बनाव सिंगार और चालढाल के साथ उसे असंगत सा प्रतीत होने लगा ।

शेवंती ने पान लगाए और बालासाहब ने अपने हाथों सब को पान दिए। दूसरे ही क्षण सब से माफ़ी मांगते हुए बालासाहब ने कहा — ‘आज इनके सर में बेहद दर्द हो रहा है। इस लिए आज का गाना अगर कल.....’

संपादक और डॉक्टर ने कुछ नाराज़गी से हाँ में हाँ मिलाई। तभी भीतर जाने के लिए शेवंती को उठते देख संपादक ने कहा — ‘सुनिए। ‘उस’ विषय में आप बिलकुल बेफ़िक्र रहें। आप देखती रहिए बस ! उस जग़्गू की इस तरह खाल उधेड़ूँगा कि.....’

शेवंती मौन रही। दूसरे ही क्षण दरवाज़े पर लगा परदा एक ओर हटाकर बोझिल से कदमों से वह भीतर चली गई—पल भर के बाद डॉक्टर ने कहा — ‘खैर बालासाहब। गाना नहीं तो न सही। लेकिन ‘पीना’ तो ज़रूर होगा ही !’

‘भला, यह भी कोई बात है। शराब पीने पर चाहे दुनिया भर में पाबंदी लग जाय पर हमारे बालासाहब की मजलिस में वह कभी नहीं लग सकती।’ संपादक ने कहा।

कवि की ओर देखते हुए बालासाहब ने कहा — ‘आजकल तो सब कोई ड़िंक किया करते हैं। आप भी अगर हमारे साथ शराक़ हो जायें.....’

संपादक बीच ही में बोल उठे — ‘कविराज, यह कोई मामूली बीयर नहीं है। इन बोतलों में वह अमृत भरा है जिसे बालासाहब ने काले बाज़ार में चालीस चालीस रुपये फ़ी शीशी खरीदा है।’

‘भई, हमें तो माफ़ ही करो।’ हाथ जोड़कर कवि ने कहा।

भीतर जाते हुए संपादक ने कवि के कानों में चुपके से कहा— ‘शेवंती को अच्छी तरह से देख तो लिया न तुमने? अब दो घंटों में उस पर एक ऐसी बढ़िया कविता लिख दो कि पढ़ते ही तबीयत फड़क उठे। तब तक हम लोग वापस लौटेंगे। कविता बालासाहब को दिखाने पर वे तुरन्त.....’

उस कमरे में अब कवि ही अकेला रह गया। अपने चारों ओर उसने देखा। कोने में रखी मेज़ पर गांधीजी की एक सुंदर मूर्ति दिखाई दे रही थी। उसकी बगल में शिवाजी महाराज का एक चित्र दीवार पर लटक रहा था। सहसा उसके मन की अवस्था मधु-मक्खियों के उस छत्ते की सी हो गई जिसपर ज़रा सी चोट पहुँचते ही हज़ारों मधु-मक्खियाँ बाहर निकल कर मनुष्य पर हमला

कर देती हैं। सैकड़ों विचारों ने उसके हृदय में उथलपुथल मचा दी। वह हथकटा जगमू, जिसकी सूरत तक उसने नहीं देखी थी—शेवंती—संपादक—डॉक्टर—बालासाहब, इन सब पर संचित हुए उसका दिमाग परेशान हो गया। उसे दिखाई देने लगा कि जगमू अपने कटे हाथ से शराब की बातल पकड़ने की कोशिश कर रहा है, अभी अभी लिखा हुआ संवाद शेवंती के हाथ में थमाते हुए संपादक ने धीरे से उसके गाल पर प्यार का एक हल्का सा चपत जमा दिया। शिवाजी की तसवीर के सामने खड़े होकर उन्हें चेतावनी देते हुए बालासाहब कह रहे हैं—‘देखिए मिस्टर शिवाजी, हमारे आगामी चित्र में आपको एक प्रेम भरा गीत गाना होगा। उसे इस ढंग से गाइयेगा कि...’ डॉक्टर अपनी पत्नी को इंजेक्शन दे रहे हैं और हल्की आवाज़ में नर्स के कानों में कह रहे हैं—‘पाँच इंजेक्शन काफी हैं। अब देखना, मेरे और तुम्हारे बीच का यह रोड़ा महेशा के लिए.....’

इन चित्रों को देख कर कवि के रोंगटे खड़े हो गए। वह विव्हल हो उठा और कमरे में चहलकदमी करने लगा। अचानक किसी नारी—कंठ से निकली रुदनध्वनि उसे सुनाई दी। उसकी समझ में नहीं आया कि यह सिसकियाँ कौन भर रहा है। कुछ समय पहले की शेवंती की करुण मुद्रा उसकी आँखों के सन्मुख खड़ी हो गई। उसे यह भाँपते देरी न लगी कि भीतर अवश्य वही फूट फूटकर रो रही है। दिमाग लड़ाकर वह हैरान हो गया। पर उसकी समझ में नहीं आया कि एक धनवान व्यक्ति के पास रखेली के नाते रहने वाली इस स्त्री को ऐसी किस मुसीबत ने आ घेरा है जो इसे इतनी रात बीते रुला रही है।

वह और भी ज़्यादा व्याकुल हो उठा और कमरे में लगे चित्र देखने लगा। फाँसी के तख्ते पर लटकाए ईसा मसीह के चित्र की ओर देखते हुए उसकी आँखें सजल हो उठीं। उस चित्र के निकट ही एक दूसरा चित्र लगा था। कोई नन्ही सी—प्यारी सी—लड़की फलों की दूकान के सन्मुख खड़ी है। वहाँ रखे आम, अंगूर, सेब आदि फलों में से कौनसी चीज़ खरीदी जाय इस संध्रम में वह व्यस्त है। इस दृश्य को चित्रकार ने चित्र में अतीव सुंदर ढंग से अंकित किया था।

चित्र में दिखाई देने वाले उन फलों की आर देखते ही कवि को अपनी भानजी का, और उसने उससे नारंगियाँ लाने को कहा था इस बात का स्मरण एक साथ हुआ। घड़ी दो घड़ी में अगर वह शेवंती पर कोई कविता लिख

पाया तो.....

वह आरामकुर्सी पर बैठ गया और सोचने लगा। बचपन में कंठ किए कई शृंगारिक गीत उसे याद आने लगे। कई मृदुल शब्दों और उन्मादक भावों की फड़फड़ाहट उसके मस्तिष्क में होने लगी। फिर भी कविता की एक भी पंक्ति वह न लिख सका। जब भी वह सोचने लगता कि यह पंक्ति ठीक है, तभी हठात् शेवंती की करुण—मुद्रा उसके नेत्रों के सामने खड़ी हो जाती और उसकी लेखनी वहीं की वहीं रुक जाती...

आँखें फाड़ फाड़ कर वह अपने गिर्द देखने लगा। उसे प्रतीत होने लगा कि वह किसी आकर्षक ढंग से सुसज्जित कमरे में नहीं बैठा है, वह तो बैठा है किसी भयानक स्मशान में ! जिस स्थान पर गांधीजी और ईसा मसीह के चित्र केवल ऊपरी सजावट के लिए लगाए जाते हैं और उनके सन्मुख ही उनकी अनमोल शिक्षाओं को पैरोंतले रौंदा जाता है उस स्थान पर.....

वह झट से उठ खड़ा हुआ। बिना किसी से कुछ कहे, वहाँ से उठकर सीधे अपने घर चले जाने के इरादे से—

सहसा दरवाज़े पर लगा परदा हिलता दिखाई दिया। चौंक कर वह ठहर गया। उसके सन्मुख शेवंती खड़ी थी। कवि भाँप गया कि वह कुछ कहना चाहती है लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वार्तालाप का आरंभ किस प्रकार किया जाय ? शेवंती की आँखों में आँसू छलछलाते देख वह और भी ज़्यादा दुविधा में पड़ गया।

तभी सहसा बालासाहब की आवाज़ उसे सुनाई दी—‘शेवंती’—

बंदूक की आवाज़ सुनते ही फुर्र से उड़ जाने वाले परिंदे के समान शेवंती वहाँ से पलक मारते ही अदृश्य हो गई।

भीतर वाले कमरे में महफ़िल जमी थी और वहाँ से सब के साथ शेवंती का भी कंठस्वर उसे सुनाई दे रहा था। अब वहाँ और रुकना कवि के लिए असंभव था।

उसी उद्धिग्न मनःस्थिति में उस बंगले से वह बाहर चल दिया।

चारों ओर घोर सन्नाटा छाया हुआ था। दिनभर का श्रांत क्लान्त सा वह नगर मध्यरात्रि की गोद में किसी अबोध बालक के समान शांतचित्त सो रहा था।

वह स्तब्धता कवि को भयानक सी प्रतीत होने लगी। उसने सोचा, इस विस्तीर्ण, असीम धरातल पर उसका कोई नहीं है। वह अकेला ही है। बिल्कुल अकेला-निराधार-निःसहाय ! मन में इस विचार के उद्भासित होते ही भय से उसका कलेजा काँप उठा। उसने नज़र उठाकर ऊपर की ओर देखा। अनगिनत तारे आकाश में जगमगा रहे थे। जब वह जेल में था तब खिड़की के सलाखों में से एक आध तारे का दर्शन हो जानेपर उसके हृदय को कितनी सांत्वना मिलती थी; पर आज संपूर्ण नक्षत्रमंडल उसे निस्तेज, श्रीहीन सा प्रतीत हो रहा था।

रास्ते के दोनों ओर की वह ऊँची अट्टालिकाएँ, अंधकार के सागर से आहिस्ता से झाँककर देखने वाले किसी दानव के निवासस्थान जैसी उसे दिखाई देने लगीं।

सोच सोचकर उसका हृदय रह रहकर व्याकुल होने लगा। काव्य, सुंदरता, भावना, मानवता आदि जिन बातों की वह जन्म से अर्चना करता आया है, उनके लिए वर्तमान जगत् में क्या कोई स्थान नहीं है ? उसे जान पड़ने लगा कि जीवन के इस विशाल वृक्ष में जहाँ तहाँ विषैले ही फल लगे हैं। यह भावना उसके मन में प्रति-पल प्रबल होती गई और उसे जीवन में श्रद्धा ही नहीं रही।

टहलता हुआ वह शहर के बाहरी हिस्से में आ पहुँचा। उसने सोचा, उधर चलने वाली शीतल वायु की थपकियों से उसके मास्तिष्क में उठा हुआ यह तूफ़ान कुछ शांत हो जाएगा।

चट्टानों की शय्या पर, सितारों के फूलों की आसमानी रंग की चादर ओढ़कर उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

कुछ ही क्षणों में उसकी झपकी लग गई।

वह एक स्वप्न देखने लगा।

उसने बहुत चेष्टा की परंतु किसी अजगर के कक्ष में जा पहुँचे भेड़ के बच्चे के समान उस स्वप्न से वह किसी तरह छुटकारा न पा सका। उसके अंतर्मन की संपूर्ण चेष्टाएँ व्यर्थ गईं और अंत में वह खामोशी से स्वप्न देखने लगा।

विस्तीर्ण.....अत्यंत विशाल सा कोई बाज़ार उसे दिखाई दे रहा था। नर-नारियों की वह अपार भीड़ ऐसी दिखाई दे रही थी कि जैसे हज़ारों मेलों का जमघट उस एक ही स्थान पर हो गया हो। उस जनसमुदाय का सम्मिश्र कोलाहल इस तरह सुनाई दे रहा था कि मानों दस पाँच सागरों के ज्वार का गर्जन

ही एक साथ सुनाई दे रहा हो। पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ और बालकों की भाँति वृद्ध भी उस बाज़ार से कुछ न कुछ खरीदने के लिए दौड़धूप कर रहे थे।

उस बाज़ार की एक दूकान में एक अनमोल रत्नमाला झलक रही थी। उस माला ने एक सुंदर युवती के मन को हर लिया। उसने उसका दाम पूछा। ‘—इस अनमोल माला का दाम यों सब के सामने थोड़े ही बताया जा सकता है?’—मुस्कराकर दूकानदार ने कहा और नेत्रों द्वारा कोई संकेत किया। दूकानदार के पीछे पीछे वह युवती भीतर वाले कक्ष में चली गई।

दो घड़ी के बाद जब वह दूकान से बाहर निकली, उस वक्त वही अनमोल रत्नमाला उसके गले में जगमगा रही थी। निर्लज्जता को अंगीकार किए, उस दूकानदार के साथ उसे एकांत में जाते हुए देख उसकी हँसी उड़ाने वाले वही लोग अब उसके सामने दुम हिला रहे थे।

इस बाज़ार में लगी हर एक दूकान का ठाटबाट अनुपम था। स्थान स्थान पर विभिन्न चीजें बेची जा रही थीं। हर एक चीज़ का मूल्य भी अपूर्व था।

किसी दूकान पर जिप्सा-लोलुपता के लिए दूकानदार के सम्मुख आत्मसम्मान को पैरोंतले रौंदा जा रहा था। किसी दूकान से पवित्रता के मोल लब्ध-प्रतिष्ठा खरीदी जा रही थी। तीसरी जगह क्षणिक भोग-विलास की खातिर आत्मा को रेहन रखा जा रहा था। चौथी जगह एक पलड़े में डाल रखी दानवी लालसा के बदले, मनुष्यता के टुकड़े टुकड़े कर दुसरे पलड़े में डालकर उसका तौल हो रहा था; लेकिन उन सब टुकड़ों का तौल होने पर भी पहला पलड़ा ऊपर उठने का नाम तक न लेता था।

इस बाज़ार में हर एक व्यक्ति कोई न कोई चीज़ खरीद रहा था। सम्पूर्ण बाज़ार में एक ही व्यक्ति ऐसा दिखाई दे रहा था जो बिना कुछ खरीदे, चुपचाप एक कोने में जा खड़ा था। उसका दाहिना हाथ जाने किसी लड़ाई में कट गया था या।

भीड़ में से किसी ने आवाज़ दी—‘जगू...’। उस हथकटे ने पीछे की ओर मुड़कर देखा। चौककर कवि ने आँखें खोलीं। उसने यहाँ वहाँ देखा, पर सिवा झिल्ली-झिगुरों की आवाज़ के अन्य कोई आवाज़ उसे सुनाई न दी।

अनशन, अनिद्रा और खुली जगह में सोने की वजह, और इन सब से बढ़कर, संध्या-समय से लेकर अब तक, इस संसार पर तथा अपने जीवन पर बड़ी देर

तक सोचने के कारण कवि क्षुब्ध हो उठा था और उसे थकान सी भी मालूम होने लगी थी। घर जाकर शांतचित्त सो जाने^१ के इरादे से वह उठ खड़ा हुआ लेकिन घर जाने का विचार मस्तिष्क में आते ही उसके हृदय की अवस्था तूफान में थराने वाली दीप-ज्योति सी हो गई। ज्वर में कराहती उसकी वह नन्ही सी भानजी माँ से पूछती होगी—‘मामा अब तक क्यों नहीं आए माँ? मेरा गला सूखा जा रहा है। मुझे ज़रा सा नारंगी का रस पिला दो न माँ!’

कवि ने सोचा, आज यदि उसकी जेब में चार आने होते...तब तो रात के नौ बजने के पहले ही दो नारंगियाँ खरीद कर दौड़ा दौड़ा वह घर चला जाता...

जेब में हाथ डालते ही कविता का वही कागज़ दुबारा उसके हाथ लगा। उसे खींचकर उसने जेब से बाहर निकाला और उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। अंधेरे में वायु के साथ वह टुकड़े न जाने किस ओर उड़ गए।

उसका प्रक्षुब्ध मन हाहाकार कर उठा—काव्य, सुंदरता, सत्य, भावना, मानवता ये सब सेल्युलॉइड के खिलौने हैं। बालकों के मनोरंजन के लिए वे अवश्य उपयोगी हैं। पर युवावस्था में, लौकिक व्यावहारिकता की अभि की एक ही चिन्गारी इन पर पड़ते ही ये सब जलकर खाक हो जाते हैं। विकृत संवादों के सहारे जीविका चलाने वाला और हवा का रुख देखकर काम करनेवाला वह चलता पुरज़ा संपादक, गुलछरें उड़ाने के लिए प्रसूति के बेस का बहाना कर पत्नी की प्रवचना करने वाला वह रंगीला डॉक्टर, पानी के समान पैसा बहाकर एक निष्पाप बालिका के शील, सौंदर्य और यौवन को खरीदने वाला वह बाला-साहब। इस दुनिया में किस बात की कमी है इन नरपशुओं के लिए? और एक वह है जिसने अपना बर्ताव हमेशा मनुष्य के जैसा रखा और इसी कारण आज उसके पास बीमार भानजी के लिए दो नारंगियाँ खरीदने के लिए भी...

उसने सोचा, आँसू बहाकर, किसी के कंधे पर सिर रखकर उसके हृदय के इस असहनीय बोझ को हल्का किया जाय तो..... ?

रास्ता चलते हुए उसने देखा। रास्ते की दाहिनी ओर माइल स्टोन दिखाई दे रहा था और बाईं ओर एक निष्पर्ण वृक्ष खड़ा था जो भूत के समान दिखाई दे रहा था।

विचारधारा में प्रवाहित होते हुए, उन्मत्त की भाँति वह चला ही जा रहा था। जन्म-मृत्यु-नारंगी-प्यार-मोहब्बत-परमेश्वर-जिसके एक ही हाथ है.....फ़द

आवाज़ के साथ छन छन करती हुई बोतल से गिरनेवाली सुवर्णमुद्राएँ...राज-तिलक के मंगल अवसर पर गला फाड़कर रोनेवाली रानी...मंदिर-जिसमें शराब की बोतलें खचाखच भरी हैं...टूटा हुआ थर्मामीटर.....उस में से धरती पर गिरा हुआ पारा—उस पारे की हर एक सूक्ष्म गोली से देह धारण करनेवाले अनगिनत विशालकाय दानव—उनमें से एक तो संसार की समस्त सुंदर नारियों को ज़बर्दस्ती पकड़कर उनके स्तनों को चीरता—काटता हुआ चला जा रहा था। दूसरा, भुख-मरों की लाशों को चीरकर उनके कलेजे नोच नोचकर खा रहा था; तीसरा आज्ञा दे रहा था कि उसके स्वागत के लिए आयोजित हर एक मेहराब अबोध बालकों के मस्तकों से सुसजित की जाय।....

कवि के विचारों की दशा ठीक वैसी हो गई थी, जैसे किसी को थिएटर में आग लग गई हो, उसमें बैठा हुआ जन समुदाय बाहर निकलने के लिए प्राण लेकर दौड़ता हो, उस भीड़ भड़कने में एक दूसरे की टाँग में उलझी टाँग को छुड़ाने की लगे कोशीश कर रहे हो और एक दूसरे को ठेलते, कुचलते हुए बाहर निकलने के लिए छटपटा रहे हो—

उसने सोचा, इस तरह सोच सोचकर कहीं वह पागल न बन जाय। इस विचार से उसके रोंगटे खड़े हो गए, वहाँ पर वह खड़ा रह गया। इतने में किसी को विचित्र, प्रकंपित कंठस्वर में कहते हुए उसने सुना—भागो—भाग निकलो यहाँसे—ये सब कुष्ठ रोगी तुम्हें आलिंगन करनेके लिए दौड़े आ रहे हैं। वह संपादक—वह डॉक्टर—वह बालासाहब—वह जग्गू—वह शेवंती। देह में कुष्ठ रोग हो जाना कहीं अच्छा, पर हृदय को ग्रस लेनेवाला यह गलित—कुष्ठ रोग महा भयानक होता है। भाग निकलो—भागो यहाँ से—चाहे नदी की धारा में कूद पड़ो और उसके गर्भ में कहीं भी छिपकर जा बैठो—चाहे किसी वृक्ष पर चढ़ बैठो और वहाँ से ऊपर की ओर छायांग मारकर काले बादलों की चादर ओढ़ कर छिप जाओ—चाहे कुछ भी करो.....लेकिन.....

वह स्वयं नहीं जानता था कि वह किस लिए इस तरह दौड़ता हुआ जा रहा है। अविराम गति से वह दौड़ता हुआ ही चला जा रहा था। उसे आभास हुआ कि पीछे की ओर से कोई जोर से चीख रहा है, उसे आवाज़ दे रहा है—पहले तो स्वयं उसने रुकना नहीं चाहा, और बाद में, रुक जाने की उच्छा होने पर भी उसके परा ने रुकना अस्वीकार कर दिया।

सहसा निकट की गली में से एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आया और उसने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। कहा — ‘ऐ बदमाश ! सुनाई नहीं देता ? कब से गला फाड़ फाड़कर चीख जो रहा हूँ कि खड़ा रह जा। दिखाना तो अपनी जेब। कहीं हाथ वाथ तो नहीं मार आया बच्चू ?’

कवि ने सोचा, शायद वह गश्तवाला पुलिस है। कवि की जेब में हाथ डालकर वह तलाशी लेने लगा। कवि ने इस पर कोई प्रतिवाद नहीं किया। केवल वह मन ही मन हँसता रहा। उसने सोचा, कविता का वह कागज़—जिसे उसने अभी अभी फाड़ डाला है—काश इसके हाथ लग जाता.....

कवि का ध्यान सामने दिखाई देनेवाले सिनेमा घर की ओर था। उस संभ्रांत अवस्था में भी वह पहचान गया कि यह वही अशोक थिएटर है, जिस थिएटर में जग्गू ने कल रात शेवंती का हाथ पकड़ लिया था।

उसका हाथ कसकर पकड़ते हुए गश्तवाला सिपाही बड़बड़ा रहा था — ‘सुसरे ! इतनी रात गए ऐसे फटे हाल किस इरादे से बाहर धूम रहा था ? मुँह से शराब की गंध नहीं, जेब में चोरी का मालटाल भी नहीं, उस चौरंगी पर की किसी नाजनीन पर न्योछावर कर आया होगा—चलो, बैठो थाने में सुबह होंगे तक। बिना उसके तुम्हारा यह पाजीपन कम न होगा।’

कवि का मन संज्ञाहीन सा हो गया था। यूँ भी घर जाने में उसे डर सा मालूम हो रहा था। वह चुपचाप गश्तवाले के साथ चला गया।

कोतवाली में बैठा बूढ़ा सिपाही बैठेबैठे ऊँध रहा था। गश्तवाला सिपाही जो व्यक्ति उसे सौंप गया था उसे उसने इस प्रकार भीतर की कोठरी में ठेल दिया—कि जैसे कोई किसी गठरी को वहाँ पर पटक दे। दूसरे ही क्षण वह खर्राटे भरने लगा।

कवि पल भर एक कोने में जा खड़ा रहा। अब उस कोठरी के अंधेरे के बीच ही उसे कुछ कुछ दिखाई देने लगा। मुँह के गिर्द गुनगुनाने वाले मच्छरों की परवाह न करते हुए उसने नज़र दौड़ा कर यहाँ वहाँ देखा। वहाँ एक कोने में कोई वस्तु दिखाई दे रही थी—शायद देह की गठरी बनाए कोई मनुष्य सो रहा था। दिल ही दिल में कवि ने कहा—‘जान पड़ता है कोई गरीब सो रहा है। सो लेने दो बेचारे को’। वह दिल में ऐसा कह भी न पाया था कि तभी उस गठरी के भीतर से किसी को सिसकते हुए उसने सुना। मोटर के स्टार्ट होते ही थर्राते वाले

इंजिन के ढक्कन जैसी उस व्यक्ति की देह थर्रा रही थी।

अब कवि से न रहा गया। वह चुपके से आगे बढ़ा। कोने में लेटी उस दुखी आत्मा को सांत्वना देने के लिए उसके बाँए कंधे को छूने की उसने चेष्टा की। उसके कंधे पर उसने हाथ रखा ही था.....

उसी क्षण उसका हाथ हठात् नीचे आ गिरा। अब उसे इस बात में तानिक भी संदेह न रहा कि यह वही जगमू है जिसे कल रात पुलिस के हाथों सौंपा गया था। वह उसके निकट बैठ गया। उसकी पीठ को बारबार सस्नेह सहलाते हुए उसने कहा—‘रो नहीं जगमू, रो नहीं!’ कवि के मुँह से इन शब्दों को सुनते ही उस व्यक्ति ने चौंक कर ऊपर की ओर देखा। कवि के कंधे पर सिर रख कर रुद्ध कंठ से उसने कहा—‘बिना किसी गुनाह के मैं यहाँ आया हूँ भाई, मैं बिलकुल बेकसूर हूँ।.....’ मुस्कराकर कवि ने कहा—‘और मैं भी! आज की दुनिया में ऐसे कई लोग हैं जिन्हें बिना किसी अपराध के भयानक सज़ा भुगतनी पड़ रही है जगमू!’

जगमू धीरे धीरे कवि को अपनी कहानी सुनाने लगा। उसे सुनते समय कवि ने सोचा कि सुसज्जित दीप्तिमान प्रासादों की अपेक्षा अँधेरी कोठरीयों में ही काव्य के लिए अधिक उपयुक्त सामग्री मिल सकती है।

जगमू तो दूटे फूटे शब्दों में अपनी कहानी सुना रहा था किन्तु उसे सुनकर कवि की आँखों के सन्मुख जो चित्र उपस्थित हो रहे थे वे कितने करुण—कितने उदात्त थे।

किसी देहात में एक किसान के घर जगमू ने जन्म ग्रहण किया। उसकी आयु पाँच वर्ष की थी तभी से वह खेत पर काम करने के लिए जाने लगा। उसका पिता कागज पर कलम के द्वारा लिखना नहीं जानता था, वह तो धरती पर हल की नोक से लिखने में विशेष चतुर था। जी जान से कोशिश करने पर भी, मुद्दतों से महाजन के पास रहन रखी जमीन वह न छुड़ा सका। एक दिन खेत में काम करते हुए साँप ने उसे काट खाया.....

और उसी में उसकी मृत्यु हो गई। अब गृहस्थी का कठिन बोझ पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु से ही जगमू ढोने लगा। इसी बीच उसका ब्याह हो गया। उसकी बाल्य—सखी ही उसकी पत्नी बनी। वह अतीव सुंदर थी। उसका कंठ भी राजब का मधुर था। केवल खेती ही पर जगमू की गृहस्थी नहीं चल सकती थी। नौकरी

की तलाश में वह बंबई चला आया। बंबई आने पर रात के समय चलने वाली किसी स्कूल में उसने पढ़ना लिखना सीखा। समाचार पत्र पढ़कर ही वह गांधाजी का भक्त बन गया। कपड़े की मिल में काम करते हुए भी शराब की एक बूँद तक को उसने कभी स्पर्श नहीं किया। पर न जाने क्या वजह थी जो अचानक बाज़ार को मंदी ने आ घेरा और मिलों का काम घट गया। जगू अब बेकार हो गया। घर चिठ्ठी लिखते हुए भी उसे लज्जा सी मालूम होने लगी। अंत में उसे किसी के द्वारा पता चला कि 'नया संसार' नामक किसी अखबार के लिए कंपोज़िटर्स की आवश्यकता है। पर यह अखबार बंबई में नहीं निकलता था, इसलिए उसने बंबई का त्याग कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तक गृहस्थी सँभालने योग्य वेतन का प्रबन्ध नहीं होगा, तब तक वह घर पर कोई चिठ्ठी न भेजेगा। कुछ ही दिनों में 'नया संसार' में उसने अपना आसन जमा लिया। गांधीजी के भाषणों के शब्दों को कंपोज़ करते समय और किसी अंग्रेज़ की इस सम्मति को कि 'गांधीजी इस युग के ईसा मसीह हैं' शब्दों द्वारा प्रकट करते हुए वह प्रसन्न हो उठता। किन्तु बाद में 'नया संसार' ने अपना रुख बदल दिया—गांधीजी पर उसमें कटु आलोचनाएँ छपने लगीं—यह समाचार कि टहलने जाते समय गांधीजी किसी स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर जाते हैं, विकृत ढंग से बार बार छपने लगा। इस तरह के संवादों को कंपोज़ करते हुए जगू असीम वेदनाओं का अनुभव करता—इसी बात पर एक दिन मालिक से उसकी झड़प हो गई। मालिक ने उसे उसी वक्त वहाँ से बाहर कर दिया।

तनखाह चाहे कम क्यों न मिलती हो, किन्तु समाचारपत्र की नौकरी यह एक पवित्र व्यवसाय है, यह सोचकर यहाँ का काम उसने स्वीकार कर लिया था। पिछले दो वर्षों में वह फूटी कौड़ी तक अपने घर न भेज सका था और न घरवालों को उसने इस बात का पता लगने दिया था कि वह कहाँ पर है और क्या करता है। कभी कभी माँ, स्त्री और छोटे छोटे भाई बहनों की याद आकर वह विव्हल हो उठता। काम में व्यस्त रहने पर भी वह उन्हें किसी तरह भुला न पाता। लेकिन बाद में, तुरन्त अपने मन पर वह किसी तरह काबू पा लेता गांधीजी की किसी यात्रा के शब्दों को कंपोज़ करने लगता, और अपने दुख को भुलाने की कोशिश करता।

अचानक एक दिन उसकी जिंदगी का वह सहारा भी छूट गया। ज़्यादा

गामदनी को आशा से जगगू ने सोचा कि अब वह मोटर ड्राइवर बनेगा। कुछ ही दिनों में मोटर चलाना उसने सीख लिया। किसी डॉक्टर को ऐसे आदमी की जरूरत थी जो रात दिन उनके यहाँ रहकर ड्राइवर का काम कर सके। वहाँ पर तनखाह भी काफी थी। डॉक्टर के यहाँ की नौकरी जगगू ने स्वीकार कर ली। डॉक्टर का प्रैक्टिस जोरों से चल रहा था। जगगू को दिन भर तो काम करना ही पड़ता था लेकिन रात में भी बारह एक बजने तक वह काम से छुट्टी नहीं पाता था। किसी न किसी बहाने, रोज रात के समय डॉक्टर घर से बाहर निकलते थे और कोई न कोई स्त्री उनके साथ सर्वदा रहा करती थी। मोटर चलाते हुए पिछली सीट पर चलने वाली उनकी प्रेमचेष्टाएँ जगगू को कुछ कुछ दिखाई देतीं और उनमें चलनेवाले उन्मत्त प्रेमालाप तो उसे संपूर्णतया सुनाई देते। किसी धनी व्यक्ति के घर के सामने से होकर गुजरते हुए, भीतर से आनेवाली मेठाई की महक जिस तरह गरीबों के मुँह में पानी भर लाती है, वही अवस्था जगगू की हो गई। उसे रह रहकर उसकी स्त्री की याद सताने लगी। अब वह केतनी बड़ी हो गई होगी—उसकी सुंदरता अब किस तरह निखर उठी होगी, तने दिनों के बाद घर जाने पर वह किस तरह उसे अपने बाहुओं में भर लेगा—उस तरह के सैकड़ों विचार—डॉक्टर के यहाँ जिस दिन से उसने नौकरी कर ली थी उसी रात से—उसे परेशान करने लगे। चार आठ दिन भी नहीं हो पाए थे, कि उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि अपने दिल पर काबू रखना अब उसके लिए असंभव है। मोटर चलाते समय, सामने दिखाई देनेवाले रास्ते की ओर देखने की अपेक्षा, मोटर में पीछे की ओर क्या चल रहा है यही कनाखियों से देखने में उसे ज़्यादा मज़ा आने लगा। एक दिन अपनी नर्स को साथ लिए, रात के समय डॉक्टर साहब घूमने निकले। उस वक्त उन दोनों में चलनेवाला नेर्लज्जतापूर्ण व्यवहार चुपके से देखने में जगगू अपने आप को खो बैठा और भ्रसावधानी के कारण रास्ते के मोड़ पर मोटर उलट गई। जगगू का बायाँ हाथ हट गया। अंत में ऑपरेशन के द्वारा उसका वह हाथ काट डालना पड़ा। डॉक्टर के यहाँ की नौकरी में दो तीन महीने की जो तनखाह उसे मिली थी उसमें से कुछ रुपये बचाकर घर भेजने के लिए उसने रखे थे वे सब रुपये हाथ के ऑपरेशन में खत्म हो गए और ऊपर से नौकरी भी चली गई।

हथकटे मनुष्य को नौकरी भी कौन देता ? किसी सिनेमा घर में उसने डोअर

कीपर की नौकरी कर ली। वहाँ पर मिलनेवाली तनखाह में एक व्यक्ति का पेट मुश्किल से पल सकता था। जगगू एक घेला तक घर न भेज सका। अब घर की—युवा पत्नी की—घर के आँगन में लगाई तुलसी मैथ्या की—बुत्ते की तथा बृद्ध माँ की स्मृतियाँ रह रहकर उसे बुरी तरह तड़पाने लगीं। आगे चलकर इन सब स्मृतियों के कारण, रास्ता चलते हुए, किसी के सहज स्पर्श से भी वह अनुभव करने लगा कि जैसे उसके सब पुराने घाव ताज़ा हो गए हों। जी को दहला देने वाली उन स्मृतियों से बचने के लिए वह घंटों, सिनेमा घर के द्वार पर खड़ा रहकर परदे पर दिखाई देनेवाले चित्रों के देखने में व्यरत रहने लगा। उसके जीवन में यही एक—मात्र साधन था जिसके कारण वह मुफ्त में अपना मनोरंजन कर पाता था। लेकिन इन चित्रों को देखने में तल्लीन होने पर भी हृदय को शांति पाने की अपेक्षा उसकी बेचैनी बढ़ती ही जाती थी। परदे पर दिखाई देने वाले प्यार भरे दृश्यों को देखते हुए और सिनेमा में गाए जानेवाले प्रेम भरे गीतों को गुनगुनाते हुए, यौवन के प्रांगण में खड़ी उसकी स्त्री की मूर्ति उसके आँखों के सम्मुख अचानक आ खड़ी हो जाती और वह छटपटाने लगता। रात्रि का एक बज चुकने के बाद वह अपने दरबे जैसे मकान में जा पहुँचता, वहाँ पर टाट में लिपटे हुए मैले से बिस्तर को वह ठोकर से फैला देता और दिन भर के परिश्रमों के कारण थक कर चूर देह को उस पर झोंक देता... वह लाख कोशिश करता पर उसे नींद किसी तरह न आती। 'जल बिन मीन' जैसा वह छटपटाने लगता और करवटें बदलते हुए आँखों ही आँखों में रात व्यतीत कर देता।

टूटे फूटे शब्दों में कवि को उसने अपनी कहानी यहाँ तक सुनाई। पर इसके आगे वह और कुछ कह न सका। वह फूट फूटकर रोने लगा।

स्नेह भाव से उसकी पीठ सहलाते हुए कवि मन ही मनमें कह रहा था— 'जन्म से लेकर आज तक हर एक प्रकार के सुख से वंचित रहने पर भी इस व्यक्ति में अब भी प्रचुर मात्रा में मनुष्यता बाकी है। यह सरस्वर झूट है कि जीवन के वृक्ष में निरंतर, केवल ज़हरीले ही फल फलते हैं। उसमें किसी वक्त एक आध अमृत-फल भी...

वह तमोमय कोठरी अब शनैः शनैः आलोकित होती जा रही थी—शायद सुबह हो रही थी—

कवि के स्नेहपूर्ण स्पर्श से जगगू के हृदय को सात्वना प्राप्त हुई। वह कहने

लगा—‘कल रात की सच्ची सच्ची घटना मैं तुम्हें सुनाता हूँ भाई ! ईश्वर की सौगंध, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस में जरा भी झूठ नहीं । कल रात पक्कर शुरू हो जाने पर उस बालासाहब का एक सेवक किसी स्त्री को साथ लिए सिनेमा घर आया था । उस स्त्री की शक्ल बिल्कुल मेरी स्त्री से मिलती जुलती थी । भीतर जाते हुए उस स्त्री ने पीछे मुड़कर मेरी ओर देखा । सिनेमा हॉल में जाते हुए उन दोनों को अँधेरे में रास्ता दिखाने के लिए मैंने टॉर्च जलाया । उसकी रौशनी में उसका चेहरा मुझे कुछ कुछ दिखाई दिया । वह मेरी ही स्त्री थी । एक बार सोचा कि उसे अपना परिचय दे दूँ किन्तु—उसके वे कीमती वस्त्र—बहुमूल्य आभूषण—उसके साथ आया हुआ वह बालासाहब का रंगीला सेवक—बालासाहब को मैं अच्छी तरह जानता था । अपनी स्त्री को चरित्र—हीन दशा में देख क्रोध से मैं उन्मत्त हो उठा । उसी समय इस विचार से मैं दो कदम आगे बढ़ा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटकर उसकी हत्या कर डालूँ ।

लेकिन तभी अचानक मेरे कटे हाथ का मुझे स्मरण हो आया । गला घोटकर उसे मार डालने के लिए या बाहों में उसे भर लेने के लिए परमात्मा ने मेरे दोनों हाथों में से अब केवल एक ही हाथ—अपने कटे हाथ की ओर देखकर मैंने सोचा—मैं इस प्रकार हथकड़ा जो बन बैठा हूँ । क्या इस में मेरा कोई कसूर है ? मेरी स्त्री के लिए भी शायद ऐसी ही कोई घटना घटी होगी कि जिससे तंग आकर—बेबस—उसे इस मार्ग का अनुसरण करना पड़ा होगा, मेरी माँ, भाई बहनों की खातिर उसे बंबई आना पड़ा होगा, बंबई आकर उसने चारों ओर मुझको तलाश किया होगा, मेरा पता कहीं पर भी न चलने पर विवश होकर उदर—पूर्ति के लिए किसी काम की खोज में व्यस्त, वह उस बालासाहब की नज़रों में पड़ी होगी और उसने उसे बहका कर.....

पहले तो मुझे उस पर बहुत क्रोध हो आया था पर अब उस क्रोध का स्थान करुणा ने ले लिया !

मैंने सोचा कि उसे अपना परिचय दे दूँ, इस बात के लिए उससे क्षमा माँग लूँ कि दुर्भाग्य वश उसे मुझ जैसे नालायक बेककूफ पति की स्त्री होना पड़ा—और तुरन्त यहाँ से अपना मुँह काला कर लूँ ताकि उसके मार्ग में मैं रोड़ा न बन सकूँ.....

मैं ठीक से निर्णय नहीं कर पाया कि उसने मुझे पहचाना था या नहीं । लेकिन

रात को मैं भौंप गया था कि किसी न किसी बहाने, हर पाँच दस मिनटों के बाद वह दरवाजे की ओर आकर दूर ही से मेरी ओर गौर से देखती हैं। शायद मेरे फटे हाथ ही के कारण वह उलझन में पड़ गई हो।

अंत में, दिल में किसी बात का निश्चय कर वह मेरे सामने से होकर गुजरने लगी। राम जाने, वहाँ से होकर जाते हुए उसने जो भी संकेत किया वह जान झूझकर किया था वह एक अकस्मिक घटना थी—पर यह सच है कि उसकी साड़ी का आँचल मेरे शरीर से छू गया। बस उसी क्षण मैं अपनी सारी सुधबुध खो बैठा। अपना दाहिना हाथ मैंने उसके कंधे पर रखा दिया। इस बात को मैं नहीं जानता था कि शायद बालासाहब का कोई सेवक उसका पीछा कर रहा है और हम दोनों की तमाम हरकतों की ओर वह गौर से देख रहा है। उसने तुरन्त गौर गुल मचाया और.....

बाहर दिन निकल आया था। सूर्य की किरणों के स्पर्श के कारण वह गंदी भी कोठरी भी मुस्कराने लगी थी। कवि के हृदय के उन चित्रविचित्र पिशाचों का और उन डरावने दानवों का—जिन्होंने उसे पूरी रात परेशान कर रखा था—अब कहीं पता नहीं था।

वह जगमू से कहने ही वाला था कि तभी उसे एक आवाज सुनाई दी। शायद गहर से कोई कोठरी का दरवाजा खोल रहा था। कवि दरवाजे के समीप आ खड़ा हुआ।

‘क्या तुम्हीं हो वह शराबी, जिसे कल रात गस्तवाला सिपाही पकड़ लाया था?’ कहते हुए वह बूढ़ा सिपाही भीतर प्रविष्ट होने ही वाला था कि इतने में उसे दरवाजे पर खड़े कविराज दिखाई दिए।

बूढ़ा उसकी ओर एकटक देखता ही रह गया। कवि को वह बचपन से पहचानता था। एक बार आंदोलन में उसके भाग जाने में भी उसने उसे सहायता प्रदान की थी।

‘एँ? यह क्या गोलमाल है? मालूम होता है कि जरूर कोई गुलतफहमी हुई है’ मुस्कराकर बूढ़े ने कहा।

‘हाँ, और वह भी सिर्फ मेरे ही बारे में नहीं, इस जगमू के बारे में भी’ कवि के मुँह से ये शब्द निकल भी न पाए थे कि इतने में एक तांगा आकर कीतवाली के सामने खड़ा हो गया। तेजी से कदम डालते हुए तांगे से एक स्त्री उतर पड़ी।

और जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वह ऊपर आ पहुँची। उसके माथे के केश बिखरे हुए थे और वह एक मामूली सी पुरानी धोती पहने थी।

कोठरी के दरवाजे में कवि के पीछे खड़े जग्गू को देखते ही वह लपककर आगे बढ़ी और नीचे झुककर उसने जग्गू के पैर पकड़ लिए। सिसक सिसक कर रोते हुए उसने कहा— ‘मुझे क्षमा कर दीजिए... उस बालासाहब का हमेशा के लिए त्याग कर, उसके जेवरों गहनों पर, उसकी दौलत पर थूक कर मैं आप के चरणों में आई हूँ—मुझे आप के चरणों में आश्रय दीजिए—मुझे माफ़ कर दीजिए.....’

अपने दाहिने हाथ से उसे ऊपर उठाने की जग्गू ने चेष्टा की। पर उसमें वह असफल रहा। शेवंती ने उसके पैर नहीं छोड़े। वह नीचे बैठ गया और शेवंती को अपने बाहों में भरकर फूट फूटकर रोते हुए उसके मस्तक पर आँसू बहाने लगा।

कवि जब घर लौटा तो दिन काफ़ी चढ़ आया था। अखबार बेचनेवाले लड़के चीखते चिल्लाते अखबार बेच रहे थे—

‘अँधेरी रात में रंगीले डोअर कीपर की काली करामातें.....नया संसार नया संसार’

‘कवि अपनी भानजी के सिरहाने जा बैठा और उसने उसके माथे को छू कर देखा। कल शाम ज्वर के कारण उसके माथे से जैसे आग की लपटें निकल रही थीं, वही माथा अब कल-कल स्वर से बहनेवाली मंदाकिनी के जल जैसा शीतल मालूम हो रहा था।

आँखें खोलकर भानजी मामा से कहने लगी—‘मामा, तुम्हें कुछ खबर भी है? कल रात सपने में मैंने एक राक्षस को देखा। मुझे जबर्दस्ती पकड़कर अपने साथ वह न जाने किस जगह ले गया था...बहुत दूर.....। मामा, मैं तो इतनी डर गई थी कि...‘माँ...मामा...मामा’ की रट लगाकर मैंने चीखना शुरू कर दिया; पर किसीने जवाब तक न दिया। फिर जानते हो मामा, मैंने क्या किया? वह मुझे किसी बर्गाचे में ले गया और वहाँ पर उसने मुझे लिटा दिया। जब मैंने देखा कि उस राक्षस की आँख लगी है, तब मैं चुपके से उठी और वहाँ पर नारंगी के एक पेड़ पर चढ़ गई। उस पेड़ ने मुझे दो नारंगियाँ दीं। वह पेड़ अवश्य जादू का पेड़ था मामा। जैसे ही मैंने दोनों नारंगियाँ हाथ में उठा लीं वैसे ही मेरे पंख निकल आए और मैं लगी हवा में उड़ने। बड़ी देर के

बाद मैंने आँखें खोलकर देखा—और देखती हूँ तो क्या ? मैं अपने ही बिस्तर पर लेटी हूँ । न तो मेरे पंख हैं और न ज्वर ही !! ’

उसके श्रांत शरीर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कवि ने कहा—‘ तुम्हारी उन जादू की नारंगियों का नाम मैं जानता हूँ । ’

‘ ऐं ? आपको किसने बतलाया ? ’

‘ मैं भी तो कल स्वप्न ही में उस बगीचे में जा पहुँचा था । उन जादू की नारंगियों में से एक का नाम है ‘जग्गू’ और दूसरी का ‘शेवंती’ । ’



शान्ति

शनैः शनैः काले बादलों को चीरकर उदयाचल की ओर सूर्य-बिंब प्रकट होने लगा। उस दृश्य को यदि कोई कवियित्री देखती तो उसके मुख से अचानक यह उद्गार निकल पड़ते कि कल संध्या-समय समुद्र में खोए सुवर्ण कलश को हाथ में लिये रजनी ऊपर आ रही थी, पर उस कलश को ढूँढते हुए रत्नाकर के तल में उसके हीरे मोतियों के कुछ आभूषण खो जाने के कारण उन्हें ढूँढने के लिए वह दुबारा समुद्र में कूद पड़ी। जल की लहरों पर, इठलाते हुए तैरता दिखाई देनेवाला यह वही सुवर्ण कलश है। उस रम्य दृश्य की ओर कोई बालक देखता तो वह आनन्द से विभोर हो उठता और उसके मन में यह विचार आता कि नंदन-कानन के सुन्दर आम्र-वृक्ष से गिरा हुआ यह एक आम्र-फल ही है जो लुढ़कता हुआ धरती पर आ रहा है। और इसी दृश्य को देखकर किसी वृद्ध के हृदय में यह विचार उठता कि यौवन के मधुर और नशीले स्वप्नों के भुलावे में उलझी हुई मानव की आत्मा ही अब जागृत हो उठी है और वह इस रूप से अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर रही है।

परन्तु उस कानन से प्रवाहित होने वाली सरिता की धारा में, सूर्यनारायण को अर्घ्य-दान देने के हेतु खड़े साधु के हृदय में इस प्रकार की किसी कल्पना का उद्भव न हुआ। मुँह से गायत्री-मंत्र का पाठ जपते हुए वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था - 'हे प्रभो ! तुम स्वयं प्रकाश-मय हो ! प्रतिदिन तुम्हारी ही असीम कृपा के कारण अग्नि-तल पर छा जाने वाले घार तिमिर का विनाश हो जाता है। प्रभो, इस पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों के अंतःकरण में छाए हुए अंधकार का लोप तुम कब करोगे ? ' घट घट में रमनेवाले राम ' सब को कब दर्शन देंगे ? दयाघन, संसार में फैले हुए

अशांति के इस दावानल को केवल तुम्हीं शांत कर सकते हो। मेरा तप ले लो, मेरा सुख छीन लो, मेरा स्वर्ग भी ले लो, किन्तु ऐसा कुछ कीजिए स्वामी, कि जिससे इस संसार में शांति का अधिराज स्थापित हो जाय। सिंह की पीठ पर बैठ खरगोश खेल सके, गरुड़ की गोद में बैठ सर्प विश्राम कर सके, अनाथों को गले लगाकर आर्य रह सके। बस, इतनी ही मेरी कामना है —'

ठीक उसी समय एक चील अपने घोंसले से झाँककर सूर्यमंडल की ओर देख रही थी। सहसा वह अत्यन्त प्रसन्न हो उठी। उषःकाल के उस सूर्य-बिंब को देखकर मानो मुरगी के नन्हे से, प्यारेसे बच्चे का चित्र उसकी आँखों के सामने खड़ा हो गया हो।

पीछे की ओर से चुपके से उसका नन्हा सा बच्चा आ निकला और माँ की गोद में प्यार से मुँह रगड़ने लगा। पीछे की ओर मुड़कर उसकी नन्ही सी चोंच में अपनी चोंच डालते हुए वात्सल्यपूर्ण स्वर में चील ने कहा '—नन्हे! तुम्हारी खातिर मिठाई लाने के लिए बाहर जाने का समय हो चुका है—मैं जाती हूँ; लेकिन सुनो, कल तुम अपने घोंसले से बाहर निकलने के लिए अधीर हो उठे थे इसलिए कहती हूँ कि तुम्हारे पंख अब तक कमजोर हैं। मन को मोहित करने वाले सामने के इस नीले से आकाश में एक दुष्ट डायन छिपी रहती है। तुम जैसे अनजान बच्चों को वह सकेतों के द्वारा अपने पास बुलाती है, उन्हें भुलावा देकर घोंसले से बाहर ले जाती है। मधुर स्वरों में वह तुम्हें गीत गाकर सुनाएगी। बादलों के हाथी और घोड़ों पर बिठलाने का वह तुम्हें प्रलोभन दिखाएगी। पर वह न भूलना भरे नन्हे, कि मासूम बच्चों की हत्या कर, उनका कोमल मांस खाने वाली वह डायन है। तुम्हें मेरी सौगंध। किसी भी हालत में अपने घोंसले से बाहर मत निकलना। जानते हो, अपने राजा बेटे के लिए आज मैं क्या लाने वाली हूँ? — साँप का एक छोटा सा बच्चा.....'—

'बच्चा?' वह नन्हा सा जीव पूछने लगा।

'हाँ, तुम्हें कैसे बताऊँ कि साँप के बच्चे का मांस कितना स्वादिष्ट होता है? केवल कहने भर से यह तुम्हारी समझ में न आएगा—आज चखकर देखने के बाद.....'

उस बच्चे ने पूछा—'लेकिन माँ, उस साँप के बच्चे के भी तो माँ होगी?'

चील ने हाँ में गर्दन हिलाई।

‘ फिर, जब तुम उसे मार डालोगी तो उसकी माँ रो नहीं पड़ेगी ? ’

‘ पगला कहीं का । मेरा नन्हा कितना भोला है । साँपों की जाति भिन्न है और हमारी भिन्न । उनसे हमारी दुष्मनी है । ’

‘ दुष्मनी ? दुष्मनी क्या होती है माँ ? ’

‘ चालें, साँपों की दुष्मन होती हैं, समझे ? ’

‘ लेकिन दुष्मन का मतलब क्या होता है ? ’

‘ उसका मतलब यह कि जिसे हम जान से मार डालना चाहते हैं वह है हमारा दुष्मन । ’

‘ लेकिन माँ, हम किस लिए उन्हें मार डालना चाहते हैं ? ’

‘ इसलिए कि उन्हें मारकर, उनके गोश्त से हम लोग अपनी उदर-पूर्ति कर सकें । ’

‘ नहीं माँ ! तब तो हम और किसी चीज से हमारी भूख का निवारण करेंगे । ’

‘ पगला कहीं का । अपने इस जंगल में उस साधु को तुमने देखा है न ? तुम्हें तो चाहिए था कि उसी के घर जन्म लेते । भूल से तुम मेरी कोख से पैदा हो गए । ’— मुस्कराकर कहते हुए बच्चे की चोंच पर वत्सलता से अपनी चोंच रगड़कर चील घोंसले से बाहर आ निकली और उसने अपने पंख हवा में इस तरह फैला दिए, जैसे कोई वायुमान ही मंथर-गति से स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर रहा हो ।

ठीक इसी समय हाथ में तीरकमान लिए एक भील अपने झोंपड़े से बाहर निकल रहा था । अपने इकलौते लाड़ले पुत्र को चूम कर उसने कहा — ‘ बेटा, जंगल के रंगबिरंगे फूल इकट्ठा करते हुए कल तुम बहुत दूर निकल गए थे । कहीं आज भी न चल देना, समझे ? जंगल में साँप बिच्छू छिपे रहते हैं । इसका कोई ठिकाना नहीं कि ये कब हमें काट लें..... ’

‘ लेकिन पिताजी..... ’

‘ लेकिन बैकिन कुछ न सुनूँगा मैं । ’

‘ और सुनो । कल आसमान में एक चील को मँडराते देख तुम हठ करने लगे थे न कि — ‘ मुझे यह चील चाहिए ! ’ आज तुम्हें चील का एक नन्हा सा बच्चा मैं ला दूँगा—बस ? पहले तुम्हारा काम, बाद में पेटपूजा के लिए शिकार... ’

लड़के ने पूछा— ‘ लेकिन पिताजी, चील के उसे बच्चे के माँ तो होगी ? ’

‘ तो रहा करे ! पगले, इस संसार में बिना माँ के कोई पैदा भी हुआ है ? ’

‘ना, ना पिताजी। तब मुझे वह चील का बच्चा नहीं चाहिए—आप उसे पकड़ लाएंगे और वहाँ उसकी माँ दुःख से पछाड़ें खायगी। कल मेरे खो जाने पर आप रो नहीं रहे थे ?’

पुत्र की पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते हुए पिता ने कहा—

‘अपने इस जंगल में रहनेवाले उस साधु को तुम जानते हो न ? तुम्हें तो चाहिए था कि उसीके घर जन्म लेते। भूल से मुझ जैसे शिकारी के यहाँ तुमने जन्म पाया। दीवाना कहीं का। परिदों और मनुष्य की भी जाति कभी एक हो सकती है ? अच्छा, चलो। अपना तीरकमान उठा लो और खेलो, कूदो.....’

प्रेम-भाव से पुत्र के कंधे को झकझोरकर और उसके कपोलों से अपने कपोल रगड़कर शिकारी झोंपड़े से बाहर निकला। अपना धनुषबाण साथ लिए वह इस कदर शीघ्रता से जा रहा था कि जैसे अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता की रक्षा के लिए कोई सैनिक ही जा रहा हो।

इसी समय झुरमुट की आड़ में एक साँपन अपने बच्चे से स्नेहपूर्ण स्वर में बातचीत कर रही थी।

बच्चा कह रहा था —‘ देखो तो माँ, दिन कब का निकल आया है। चलो, हम अपने बिल में सोने के लिए चलें।’

क्रोध से फुफकारते हुए साँपन कहने लगी—‘ नहीं। हम इतनी जल्द नहीं जाएंगे। और कुछ देर यहीं ठहरो। वह शिकारी रोज इसी रास्ते से होकर गुजरता है। बिना उसे कटकटाकर काटे मुझे शांति न मिलेगी—’

‘लेकिन माँ, कल तो उसका पैर धोखे से तुम्हारी पूँछ पर गिरा था। तुम भी माँ, बस बात का बतंगड़ करती हो। क्या मैं तुम्हारी देह पर मनमानी उछल-कूद नहीं करता ?’

‘पगला कहीं का !! मेरे नन्हे, इस जंगल में वह साधु रहता है न ? तुम्हें तो चाहिए था कि उसी के घर जन्म लेते। भूल से मुझ जैसी साँपन की कोख से तुमने जन्म लिया।’

‘लेकिन, माँ उस शिकारी को तुमने डस लिया तो वह मर जायगा। क्या, तब उसका लड़का रोएगा नहीं ?’

‘हमारी बला से ! साँपों की जाति और मनुष्यों की जाति का एक दूसरे से क्या वास्ता ?’

इतने में ही निकट की झाड़ी में सूखे पत्तों की चरमराहट सुन कर साँपन ने कहा—‘ मैं अभी अभी वापस लौट आऊँगी । तब तक तुम यहीं रहो । झुरमुट के बाहर यहाँ वहाँ मत जाना भरे नन्हे ! ’

सूखे पत्तों की चरमराहट अब भी सुनाई दे रही थी । अपने बच्चे को स्नेह से सहलाकर साँपन झुरमुट से बाहर निकली । टेढ़े मेढ़े रास्तों से होकर वह इस तरह जा रही थी मानो सागर की दिशा में कोई सरिता ही दौड़ती, बल खाती जा रहा हो ।

शिकारी चील के घोंसले की तलाश में था । साँपन छिपकर उसका पीछा कर रही थी । एकाएक उसकी निगाह ऊपर की ओर गई । अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से पृथ्वी पर निहारते हुए एक चील आसमान में मँडरा रही थी । साँपन के रोंगटे खड़े हो गए । झट से उसने झुरमुट का आश्रय लिया ।

कुछ क्षणों के बाद जब वह झुरमुट से बाहर निकली तब चील कुछ दूर जाकर मँडरा रही थी । साँपन ने यहाँ—वहाँ देखा पर उसे शिकारी दिखाई न दिया । क्रोध से उन्मत्त होकर फुँफकारती हुई वह शिकारी को खोजने लगी ।

उसे इस बात की आशंका भी नहीं थी कि उसका बच्चा भी पीछे पीछे आ रहा है । शिकारी का पुत्र भी पिता के पीछे पीछे आ रहा था और उड़ने की अनिवार लालसा से चील का बच्चा भी वृत्ताकार गति से घूमते हुए अपने घोंसले से दूर...दूर जा रहा था । यह तो जैसे सृष्टि का नियम ही है कि माता पिता उपदेश देते ही रहें और उसे ठुकरा कर उनकी संतान स्वच्छंदतापूर्ण बर्ताव करती ही रहे ।

आसमान में टोह लगाते हुए शिकारी को अचानक चील का बच्चा दिखाई दिया । तुरन्त उसने निशाना साधा । धनुष से बाण छूट पड़ा...

उसी क्षण साँपन ने उसके पैर में कटकटाकर डस लिया ।

और दूसरे ही क्षण, माँ के पीछे पीछे आनेवाले साँपन के बच्चे पर चील झपट पड़ी ! !

शांति का परम उपासक वह साधु, सूर्यनारायण को सहस्र अर्घ्य प्रदान कर ईशचितन में लीन अपनी पर्णकुटी की ओर वापस लौट ही रहा था कि इतने में ‘ पिताजी...पिताजी ’ इस तरह करुण विलाप उसे सुनाई दिया । उसके पैर झट उस दिशा की ओर मुड़े जिधर से वह आवाज उसे सुनाई दी थी । दूर ही से जो

दृश्य उसके नेत्रों को दिखाई दिया उसे देख कर उसने सोचा कि उसकी सब तपस्या आज सफल हो गई। किसी समाधिस्थ योगी के समान चील निश्चल भाव से ज़मीन पर बैठी है और उसी के सामने किसी सुंदर चित्र के समान अविचलित भाव से एक साँप लेटी हुई है।

उसे प्रतीत होने लगा कि उसकी—‘आपस में बैर करना भूलकर जीवमात्र एक दूसरे के मित्र बनकर रहें’ इस प्रार्थना को आज ईश्वर ने सुन लिया। उन दो प्राणियों के निकट ही वहाँ पर एक बालक भी दिखाई दे रहा था। साँप से चील नहीं डर रही है—मनुष्य को साँप का भय नहीं मालूम हो रहा है और मानव को देख कर चील भयभीत नहीं हो रही है। कितना सुंदर दृश्य ! कितनी महान है यह विजय। आकाश की ओर दृष्टि उठाकर भक्ति—विनम्र हो, हाथ जोड़कर साधु ने कहा—‘ प्रभो ! धन्य है—धन्य है तुम्हारी लीला । ’

लेकिन आँखें खोलकर जब वह कुछ आगे की ओर बढ़ा—तब अचानक उसकी आँखों के सन्मुख तीन लाशें दिखाई दीं। एक मनुष्य की, एक चील के बच्चे की और एक साँप के बच्चे की।

साधु के हाथ से कमंडल सहसा नीचे गिर पड़ा। अब आकाश की ओर देखने का साहस उसमें नहीं था। सिर झुका कर व्यथित भाव से वह पृथ्वी की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से टप—टप आँसू टपकने लगे।



सोने की गाड़ी

श्रीपति ने कलाई घड़ी में देखा। छः बजकर पाँच मिनट ! तुरन्त उसने मोटर की रफ्तार तेज कर दी। दादासाहब उसके इंतजार में बैठे होंगे इस विचार से वह व्यथित हो उठा !

रास्ते के मोड़ से वह गाड़ी घुमा ही रहा था कि तभी सड़क पर कीचड़ मिट्टी में खेलने वाला, मैला कुचैला सा एक बालक लपक कर आया और गाड़ी के सामने से होकर चला गया। श्रीपति का कलेजा धक से रह गया। कर्शश ध्वनि के साथ गाड़ी रुक गई। एक गंदी सी गाली श्रीपति की जबान तक आई पर सहसा जैसे उसे किसी ने पीछे की ओर खींच लिया। आठों पहर रास्ते की धूल-मिट्टी में खेलनेवाला और तांगा या अन्य कोई भी सवारी दिखाई देते ही उसके पीछे दौड़ते हुए जाकर उसमें लटक जाने वाला उसका नन्हा दौलती झट् से उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ। झल्लाकर उसने दिल ही दिल में कहा ‘— यहाँ से लेकर वहाँ तक दुनिया के सभी लौंडे कैसे शैतान होते हैं—’ उसने दुबारा गाड़ी शुरू कर दी।

कुछ ही क्षणों में किसी विशाल बंगले के पोर्च में उसने गाड़ी खड़ी कर दी। और भी तीन चार गाड़ियाँ वहाँ पर ऊँघती खड़ी थीं। उसने देखा कि अधिवेशन अब तक समाप्त नहीं हुआ है। उसे यहाँ पहुँचने में देरी नहीं हुई इस विचार से उसके मुख पर संतोष की आभा झलकने लगी।

गांधी-टोपी धारी दो चार सज्जन बंगले से बाहर निकले। वे आपस में हँस रहे थे और कुछ कानाफूसी भी कर रहे थे। उनमें से एक थे नगर के बड़े सेठ। दादासाहब के यहाँ उनका हर वक्त आना जाना था। श्रीपति के दिल में ख्याल आया कि झट नीचे उतरें और उनसे पूछें कि इतनी देर तक भीतर क्या गुल

खिल रहा था। लेकिन वह चुप रहा। उसकी यह जिज्ञासा भिखारी के उस बालक के जैसी थी, जो किसी खिलौने की दूकान में रखे सुंदर हवाई जहाज को देखकर लालायित हो उठा हो। विगत सात साल से इन गांधी-टोपी वालों को वह अच्छी तरह निकट से देखता आया है। दादासाहब दो बार जेल हो आए हैं। अब वे केवल मशहूर वकील ही नहीं, बल्कि विख्यात देशभक्त भी बन गए हैं। इस आन्दोलन के कारण गांधी-टोपी वाले व्यवसायी, वकील एवं डॉक्टरों के साथ उनका मेल मिलाप अत्यधिक बढ़ गया है। इन देशभक्तों में से कितनों के यहाँ दोपहर में खाना खाने के लिए वे कई बार गए होंगे लेकिन इनमेंसे कोई श्रीपति से एक बार तो खाना खाने के लिए कहता !—

अस्तचल की ओर जानेवाला सूर्य, तेल के समाप्त होते ही एकाएक निष्प्रभ हो जाने वाले दीपक की भाँति दिखाई देने लगा। संध्या—समय की काली परछाईयाँ तेजी से आकर चारों दिशाओं को व्याप्त करने लगीं। अब तक कहीं पर मुँह छिपाए बैठा हुआ जाड़ा, अचानक बाहर आ निकला। ठंडी हवा के झोंके चलने लगे। देह की गठरी बनाए मोटर के पहिए की ओर देखता हुआ श्रीपति चुपचाप वहीं पर बैठा रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ये छोटे—मोटे देशभक्त इतनी देर से भीतर क्या कर रहे हैं? बड़ी देर से इसी बात पर वह हैरान था। तुरन्त उसने सोचा कि मंत्रिपद का चुनाव, कोई बम्बई जाकर मोटर का नया मॉडेल पसंद करना थोड़े ही है।

उसने आँखें बंद कर लीं। सबेरे से लेकर अब तक की सब घटनाएँ एक एक कर उसे याद आने लगीं। सबेरे नौ बजते ही दादासाहब को वह यहाँ पर ले आया था। साढ़े दस बजे तीनों बिटिया रानियों को वह स्कूल छोड़ आया। दुबारा वह यहाँ पर आया। बारह बजे छोटे सरकार ने गाड़ी लेकर आने के लिए कहा था इसलिए वह झटपट वहाँ पहुँचा। उसने सोचा, छोटे सरकार की अब कहीं मर्से भाँग रही है पर उनका रुआब किसी गलगुच्छे वाले दारोगा से भी बढ़कर है। उनकी वह मतवाली चाल—सीटी बजाने की वह अनोखी अदा—बाल सँवारने का वह निराला ढंग—सिगरेट पीने की वह अकड़—और सिनेमा देखने का अजीब शौक—दादासाहब छोटे सरकार के पिता नहीं सुहाते। ये पिता पुत्र तो वैसेही दिखाई देते हैं जैसे किसी तुलसी के पौधे में केवड़ा निकल आया हो।

ठीक बारह बजे छोटे सरकार को वह सुभाष हॉटल के सामने छोड़ आया।

होटल के सामने ज्योंही गाड़ी रुकी, उनके कहने पर उसने मोटर का हॉर्न बजाया बाद में छोटे सरकार बड़ी शान के साथ गाड़ी से नीचे उतर पड़े और धूम से मोटर के दरवाजे को बंद करते हुए सिनेमा के किसी नायक जैसे मुँह से सीटी बजाते हुए होटल की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। उस सीटी की तर्ज किस गाने की थी ? हाँ.....ठीक...

‘ ओ मेरे जोबना का देखो उभार.....ओ पापी.....ओ पापी..... ’

वहाँ से तुरन्त लौट कर दादासाहब के कहने पर वह यहाँ आया था। देखा कि अधिवेशन अब तक जारी ही है। तीन बजे मालकिन को कहीं बाहर जाना था। आज—कल औरतें भी सभा—संमेलन का आयोजन करने लगी हैं न ! मालकिन को तो शुरू ही से ऐसी बातों में बड़ी ही दिलचस्पी है। वे नेत्री हैं स्त्रियों की। आठ पंद्रह दिनों के बाद स्त्रियों की एक विशाल सभा का आयोजन होगा—और सुना है कि उस अवसर पर एक नाटक भी खेला जायगा। उस नाटक में मालकिन भी काम करेंगी...रानी का नहीं,—रसोईदारिन का !

रसोईदारिन की भूमिका में मालकिन का चित्र आँखों के सन्मुख दिखाई देते ही श्रीपति हँस पड़ा। उसने दिल में कहा—वे तो माथे में इतना सा—नन्हा सा कुंकुम—तिलक लगाती हैं। किसी समय, जल्दी में जरा ज़्यादाह कुंकुम लग जाने पर, कार में बैठते ही मनिबैग के शीशे में देखकर बिना उसे कम किए मालकिन को चैन ही नहीं पड़ता।—और वही मालकिन पूर्णमासी के चंद्रमा जैसा कुंकुम—तिलक लगाकर नाटक में काम करेंगी.....और वह भी हाथ में चकला बेलन लेकर.....?

श्रीपति ने निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो, यह नाटक वह जरूर देखेगा। दूसरे ही क्षण उसके मन में किसी अमंगल दुश्चिंता का उद्भव हुआ। उसने सोचा, उस नाटक में जो रसोईदारिन दिखाई जानेवाली है, उसे यदि नाटककार ने विधवा के रूप में दिखाया हो तो... ? क्या तब भी अपने माथे के सिंदूर को मिटाकर उसमें काम करना मालकिन स्वीकार करेंगी ? छिः छिः...वह सिंदूर तो दादासाहब के नाम की निशानी है और दादासाहब तो लाखों में एक हैं। अपनी जिंदगी में उन्होंने सिगरेट तक को स्पर्श नहीं किया है। सभा—संमेलनों में उपस्थित रहने वाले प्रतिष्ठित सज्जन इर्द गिर्द बैठी स्त्रियों की ओर कनखियों से घूर घूर कर देखा करते हैं लेकिन ऐसे अवसरों पर दादासाहब की नज़र तो

सदैव नीचे ही झुकी रहती है। ऐसे देवता-समान पुरुष के नाम का सिंदूर पोंछ कर यदि मालकिन रसोईदारिन का काम करनेवाली हों तो...अगर उसे कोई मुफ्त में भी नाटक का पास दें तब भी ऐसा नाटक वह हरगिज न देखेगा। यह विचार श्रीपति के दिल में आया ही था कि मालकिन की गंभीर मुद्रा और उनके कठोर स्वर का उसे एकाएक स्मरण हो आया। आज दोपहर में थिएटर के निकट, गाड़ी से नीचे उतरते समय उन्होंने अत्यन्त कठोर स्वर में श्रीपति को अगाह किया था कि—‘ देखो। ठीक नौ बजे मुझे गाड़ी मिलनी चाहिए। नहीं तो बीड़ियाँ फँकते हुए वहाँ पर भी बैठे रहोगे, और बहानेबाजी करोगे कि ‘सरकार’ को वहाँ ज़रूरी काम से जाना था, — और हाँ, तुम्हारे सरकार यदि वहाँ जाना चाहें भी, तो वे अपने लिए किराए की टैक्सी कर लेंगे, पर मुझे तो ठीक नौ बजे...’

श्रीपति ने घड़ी में देखा। छः बजकर सोलह मिनट। आज रात के सब प्रोग्राम उसे याद हो आए। साढ़े आठ बजे तीनों बिटिया रानियों को लिवा लाने के लिए उसे अंग्रेज़ी सिनेमा घर जाना होगा। वहाँ पर बड़ा ही मजेदार पक्कर चल रहा है। उसने सोचा कि वह भी एक बार वह पक्कर ज़रूर देखेगा। उस सिनेमा घर के बाहर लगाया हुआ वह विशाल चित्र...पानी में गोते लगाने वाली वे पचासों अर्ध-नग्न लड़कियाँ...बापरे! तीनों बिटिया रानी को घर पहुँचा कर नौ बजे मालकिन को लाने के लिए उसे जाना है। दस बजे छोटे सरकार ने सुभाष होटल पर आने के लिए कहा है। वहाँ पर भोजन करेंगे वे आज! उन्हें घर पहुँचाने के बाद फिर वहाँ वह काम से छुटकारा पा सकेगा।

तुरंत सामने के बंगले में चलने वाले अधिवेशन की श्रीपति को याद हो आई। आज सबेरे नौ बजे से लेकर इस अधिवेशन का आरंभ हुआ है। अब नौ घंटे हो जाने पर भी न जाने उसकी समाप्ति हुई है या नहीं। पानी के नल पर औरतों में होने वाली झपटाझपटी एक बार जल्द खत्म हो जायेगी पर इन देश-भक्तों की...ना ना! श्रीपति इस बात का कई बार अनुभव कर चुका है।

तभी, रास्ते से गुजरने वाला एक बालक जगमगानेवाले मोटर के इंजिन को हाथ से छूकर झट भाग निकला। श्रीपति को सहसा दौलती की याद हो आई। श्रीपति कल ही उसके लिए बाज़ार से एक स्लेट खरीद लाया है और आज ही सबेरे उस पर श्री गणेशाय नमः लिख कर, उसे दुहरा कर रखने के लिए वह

दौलती से कह आया है। वह दरवाजे में ही उसकी राह देखता बैठा होगा—उर्नोदा सा—शायद वहीं पर वह सो न गया हो। और यहाँ तो.....श्रीपति ने सोचा—चाहे जितनी भी मुसीबतें उठानी पड़े, वह दौलती को खूब पढ़ाएगा। उसे दादासाहब के जैसा बड़ा आदमी बनाएगा। सुना है कि दादासाहब के भी पिता उसी के जैसे गरीब आदमी थे.....तब भी उन्होंने.....

अपने विचारों में लीन, आराम से मोटर में बैठा श्रीपति सहसा हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। दरबे का दरवाजा खोलते ही फुर्र से बाहर निकलने वाले कबूतरों के जैसे पाँच—पचास गांधी—टोपी धारी सज्जन बंगले के बरामदे में दिखाई देने लगे। उनमें से कुछ मुस्करा रहे थे, कईयों के मुख पर झुंझलाहट दिखाई दे रही थी, कुछ लोगों ने अपना मुँह इस तरह बना रखा था मानो वे अभी अभी कच्ची इमली खाकर आए हों और कुछ इस तरह प्रसन्न मुख नज़र आ रहे थे कि मानो वे काबुली अँगूर खा रहे हैं।.....

सामने से तेज़ी से कदम डालते हुए दादासाहब आ रहे थे।

श्रीपति झट् गाड़ी से नीचे उतर पड़ा। दादासाहब के साथ और भी तीन चार लोग थे, पर गाड़ी में अकेले दादासाहब ही बैठे। गाड़ी जैसे ही स्टार्ट होने लगी, उन में से एक ने कहा—‘आपकी जिंदगी में आज का दिन स्वर्ण—दिन है दादासाहब!’ दूसरे ने कहा—‘यह सब दादासाहब के पिताजी की तपस्या का फल है’—‘और स्वयं दादासाहब की भी तपस्या का!’ तीसरे सज्जन बीच ही में कह उठे—‘विगत दस वर्षों में उन्होंने अपने स्वास्थ्य तक की परवाह नहीं की, न बालबच्चों की और न जेलखाने की तकलीफों की! जानते हो, कल के अखबार में इस समाचार का शीर्षक मैं क्या देने वाला हूँ?’

‘प्राइमरी स्कूल—मास्टर के पुत्र को मंत्री—पद प्राप्त?’

जवाब में दादासाहब सिर्फ मुस्करा दिए। खुशी के मारे श्रीपति फूला न समाता था। गाड़ी स्टार्ट करते हुए पीछे की ओर देखकर उसने पूछा,

‘बंगले पर?’

‘नहीं!’

श्रीपति दंग रह गया। आज सबेरे नौ बजे दादासाहब यहाँ आए थे और शायद अब तक उन्होंने खाना भी नहीं खाया है। फिर भी.....

उसका ख्याल था कि गाड़ी किधर ले चलें यह दादासाहब बिना पूछे ही उससे

बता देंगे—उसने दो तीन बार पीछे की ओर मुड़कर देखा भी, लेकिन दादासाहब तो निश्चल भाव से आँखें मूँद कर बैठे थे। उनके मुख पर मंद मुस्कराहट..... उस स्मित को देख कर, जागृतावस्था में जिस चीज़ की प्राप्ति असंभव है उसे नौद में पाने के कारण, प्रसन्न होकर, नौद ही के वाच मुस्करानेवाले दौलती की उसे याद हो आई।

दादासाहब की तंद्रा का भंग करते हुए उसका हृदय व्यथित होने लगा। पर बिना इसके, गाड़ी किधर ले चलें यह मालूम भी तो कैसे हो? पीछे की ओर मुड़ कर उसने आहिस्ता से कहा—‘सरकार!’

चौंक कर आँखें खोलते हुए दादासाहब ने कहा—‘ओह! गाड़ी किधर ले चलें यह तुम्हें बताना तो मैं भूल ही गया! मंत्री का इस तरह भुलकड़ बनना ठीक नहीं! खैर! चलो,—ब्राह्मण-मोहल्ले में ले चलो।’

श्रीपति को इस बात का कर्तई स्मरण नहीं था कि दादासाहब को लेकर वह किसी दिन ब्राह्मण मोहल्ले में गया हो! उसकी समझ में न आया कि आज खुशी के इस अवसर पर ‘सरकार’ वहाँ पर किस कार्यवश जा रहे हैं। इस समस्या को सुलझाने की वह कोशिश कर ही रहा था कि तभी ब्राह्मण-मोहल्ले की संकीर्ण सी गली में गाड़ी ने प्रवेश किया। दस बारह मकानों को छोड़ने के बाद दादासाहब की आवाज़ उसे सुनाई दी—‘बस रोक लो। खड़ी कर दो यहीं पर गाड़ी!’

तुरन्त श्रीपति ने गाड़ी को ब्रेक लगाया। किसी दूटे फूटे मकान के सामने गाड़ी खड़ी हो गई। वह मकान फटी, बेरंग, पुरानी सी बोती पहने किसी बुढ़िया के जैसा प्रतीत हो रहा था। दरवाज़े के सामने से ही होकर एक नाली बह रही थी। चूहेदानी में फँसे चूहों के रुमान, कई परिवार उस खंडहर में निवास करते हुए जीवन से संघर्ष कर रहे थे। बच्चे रो रहे थे—बिलख रहे थे। उनकी माताएँ चीख रही थीं—चिल्ला रही थीं। बर्तन भांडों की आवाज़ सुनाई दे रही थी—धुएँ से दम घुटा जा रहा था—तले हुए प्याज की तीव्र गंध वायु के झकोरों के साथ बाहर तक आ पहुँची। दादासाहब की दृष्टि दरवाज़े से ही दिखाई देने वाले आँगन में के तुलसी के चबूतरे पर केन्द्रित हो गई थी। नाक से रुमाल लगाकर उन्होंने कहा—‘चलो—कई दिनों से दिल चाहता था कि एक बार अपने बचपन के इस मकान का दर्शन कर लूँ—अब चलो सीधे बंगले पर.....’

बंगले पर पहुँचते ही सीढ़ियाँ चढ़ते हुए दादासाहब ने आवाज़ दी।—‘पमा,

विमा, कपा...अरे, तुम सब हो कहाँ ? ' उनके स्वर में उल्लास नाच रहा था ।

श्रीपति ने धीरे से कहा— ' तीनों बिटिया रानी सिनेमा गई हैं— '

' ओह ! ' उन्होंने दुबारा आवाज़ दी— '—भैया...ओ भैया ! अरे, सुनो तो ज़रा... '

' छोटे सरकार भी शायद सैर के लिए कहाँ बाहर गए हैं ' सहम कर श्रीपति ने कहा । श्रीपति अच्छी तरह जानता था कि उसने जानबूझकर झूट कहा है । सुख और उल्लास के ऐसे महान् अवसर पर वह नहीं चाहता था कि ऐसी कोई बात कहे कि जिसे सुनकर मालिक के दिल पर ज़रा भी चोट पहुँचे । छिः छिः । कार्तिक या आपाढ़ का महा एकादशी के पुण्य पर्व के दिन भी थाली में प्याज थोड़े ही परोसा जाता है ? यदि वह सरकार से बता देता कि छोटे सरकार दोपहर ही से सुभाष होटल में गए हैं तो वे ज़रूर पूछते कि वे वहाँ पर किस-लिए गए हैं ? उस होटल में बाहरी गाँवों से आने वाले सिनेमा वाले अक्सर टहरते हैं । बड़े घमंडी और नखरेबाज़ होते हैं लोग । उनके साथ वाली औरतें भी नाज़ के साथ सिगरेट पीती हैं । इन अखुखड़ सिनेमा वालों से छोटे सरकार की गहरी दोस्ती हो गई है । परसों ही की बात है कि वे श्रीपति से कह रहे थे, ' श्रीपति, पिताजी आज ही कल में ज़रूर मंत्री बनेंगे । तब तो मैं ज़रूर हालि-वुड जाऊँगा—मशहूर डाइरेक्टर बनकर ही वहाँ से लौटूँगा । मेरी गाड़ी चलाने के लिए क्या तुम चलोगे मेरे साथ अमेरिका ? उसके बहने पर कि— ' घरवाली और दौलती को यहाँ अकेले छोड़ मैं कैसे आ सकूँगा छोटे सरकार ? ' वे खिलखिला कर हँस पड़े थे और कहा था — ' पागल हो तुम श्रीपति ! निरे हिंदु हो तुम ! तुम क्या जानो अमेरिका की बात । वहाँ पर, यहाँ के जैसे ऊबड़ खाबड़-टेढ़े मेढ़े रास्ते नहीं होते हैं । वहाँ की सड़कों से होकर गाड़ियाँ चलने लगें कि यों जान पड़ता है कि जैसे मिथी कपास के गुलगुले तकिये पर सिर रखकर हम आराम की नींद सो रहे हैं । '

दादासाहब के कपड़े बदलते ही उन्हें तरतीब के साथ आलमारी में रखते हुए श्रीपति सोच रहा था कि छोटे सरकार के विषय में झूटमूट ही बात बनाकर उस बात को उसने टाल दिया यह ठीक ही किया । वर्ना.....

कपड़े बदलने पर दादासाहब पलंग पर लेट गए । चाय लाने के लिए श्रीपति नीचे चला गया । थोड़ी ही देर में हाथ में चाय का ट्रे लिए वह ऊपर आया ।

उसने दादासाहब की ओर देखा। आँखें बंद किए वे चुपचाप लेटे थे। उनके सिर के अधपके बाल, उनकी आँखों के चारों ओर खिंची हुई कालिमा की एक हल्की सी परिधि, मुंह पर दिखाई देनेवाली झुर्रियाँ, सुविशाल भाल पर पड़ी चिंता की गहिरी लकीरें, इन सब को देखते हुए श्रीपति ने सोचा, इस आंदोलन में उसके मालिक ने जितनी भी कठिनाइयाँ सही हैं वे सब को सब आज सफल हो गईं। कुछ समय पहले किसी को कहते उसने सुना था कि उनकी जिंदगी में आज का दिन सोने का दिन है। कहने वाले ने बिल्कुल सच ही तो कहा था। आज इस बंगले में दीवाली के जैसा उत्सव मनाया जायगा। लेकिन दीवाली के दीप जलाने के लिए आज घर पर मालकिन तो हैं ही नहीं। वे तो वहाँ थिएटर में बैठी होंगी—हाथ में चकला बेलन लिए। बंगले की साफ सफाई और औरतों की सभा-संमेलनों में हिस्सा लेना—अस ! इसके अतिरिक्त तो ये कुछ जानती ही नहीं। वर्ना—वृत्ति, वच्चे.....

दादासाहब को आँखें खोलते देख श्रीपति केटली से कप में चाय ढालने लगा। किन्तु चाय का कप जो श्रीपति ने उनके सामने बढ़ाया था, दादासाहब ने अपने हाथ में नहीं लिया। उन्होंने कहा '—तनिक मेरी पीठ के पीछे हाथ तो देना श्रीपति ! ओफ ! एकाएक ऐसी लचक भर गई है कि...वैसे तो सबेरे ही से लगातार बड़ी देर तक एक ही जगह बैठने से कुछ कुछ दर्द हो ही रहा था... लेकिन ज़्यादा खुशी होने पर अक्सर मेरी यही हालत हुआ करती है। मैट्रिक में संस्कृत की छात्र-वृत्ति पाने पर पाँच मिनट तक तो मुझसे उस जगह से हिला डुला तक न गया, जहाँ पर मैं बैठा था। पिताजी अपने पौत्र का मुख देखने के लिए तरसते थे। जब भैय्या पैदा हुआ, उस वक्त, नाती के जन्म का समाचार सुनने के लिए उनके प्राण जैसे उनके कानों में समा बैठे थे। ब्राह्मण—मोहल्ले के उस पुराने मकान में ही भैय्या का जन्म हुआ। ससुर का दिल रखने के लिए तुम्हारी मालकिन जचकी के लिए अपने मायके न गई थी। प्रसूता के कमरे के बाहर मुठ्ठी में प्राण लिए मैं खड़ा था। इस समय भी वही बुढ़िया दाई थी जिसने मेरे जन्म के समय मेरी माँ का प्रसूति—कर्म किया था। मेरे म्लान मुख की ओर देखकर वह मुस्करा रही थी और बीच बीच में कमरे से बाहर झाँक कर मुझे इलासा दे रही थी। अंत में उस बंद दरवाज़े की ओट से 'क्यों हँ ! क्यों हँ !'—की मधुर आवाज़ मेरे कानों को सुनाई दी। दूसरे ही क्षण भीतर

ही से आवाज़ देकर बुढ़िया ने कहा—‘दादा ! मेरे बच्चे ! दौड़ते हुए जाकर बूढ़ों से कहियो कि उनके नाती हुआ है । ’ बेतहाशा दौड़ता हुआ मैं पिताजी के कमरे तक जा पहुँचा...लेकिन दरवाज़े ही में इस कदर लचक मार गई कि... अठारह—उन्नीस साल हो गए इस बात को लेकिन उस दर्द को मैं अब तक भुला न सका...बिल्कुल अब के जैसा ही...दोनों हाथों का सहारा देकर आहिस्ता से उठाकर पिताजी मुझे भीतर ले गए और वहाँ पर उन्होंने मुझे बिठला दिया । उस दिन वह टूटाफूटा सा मकान हमें राजमहल सा प्रतीत हो रहा था । पिताजी तो खुशी के मारे पागल हो उठे । उन्होंने उस दिन घर में दिवाली के जैसी रोशनाई की । पुराने मकान में तुमने वह तुलसी का पौधा नहीं देखा ? उस तुलसी के सामने दीप जला कर, हाथ जोड़कर खड़ी पिताजी की मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने से हिलती नहीं ! वह दिन...’

‘आज का दिन भी तो उसी दिन के समान है सरकार !’ तर्किये के सहारे दादासाहब को आहिस्ता से बिठलाकर उनके हाथ में चाय की प्याली देते हुए श्रीपति ने कहा ।

दादासाहब सिर्फ मुस्करा दिए । दूसरे ही क्षण उनकी मुखाकृति सहसा गंभीर हो उठी । उन्होंने सोचा, श्रीपति उनका पुराना सेवक है; तब भी क्या हुआ ! उसके साथ इस कदर आत्मीयता के साथ बातचीत करना कि जैसे किसी बाल्य—सखा के साथ वे गप्पें लड़ा रहे हो—उन्हें शोभा नहीं देता । इसमें कोई संदेह नहीं कि हर्ष के कारण मनुष्य पागल सा बन जाता है ! अब कल से अपनी इस बकवासी आदत का त्याग कर देना ही चाहिए । मनुष्य चाहे अपने संदूक में ताला न लगाए पर उसे तो चाहिए कि अपने मुँह में ताला जरूर लगाए—और मंत्री के मुँह में तो ताला अवश्य चाहिए, वर्ना राजनीति के गुप्त भेद.....

श्रीपति को दुबारा कप में चाय ढालते देख, उसे हाथ के इशारे से मना करते हुए दादासाहब ने कहा—‘देखो श्रीपति, आज खाना वाना हो जाने के बाद हम सब मिलकर भगवान के दर्शन के लिए मंदिर चलेगे—तब.....’

आजकल दादासाहब ने कई बार अनुभव किया था कि रात के दस बज चुकने के बाद, कहीं पर जाना हो, तो श्रीपति के माथे में बल पड़ जाते हैं । उसी तरह उनसे यह बात भी छिपी नहीं थी कि पेड़ा, बरफी या अन्य ऐसी ही कोई चीज़ मिली कि स्वयं न खाते हुए उस चीज़ को कागज़ में लपेट कर श्रीपति

चुपचाप अपनी जेब में रख लेता है। इस बात को देखकर श्रीपति के घर जाने के आकर्षण पर क्रुद्ध हो उठने के बजाय दिल ही दिल में वे उसकी सराहना करते थे। छः महीने पहले, स्वयं अपनी आँखों से देखकर इस बात का उन्होंने विश्वास कर लिया था कि श्रीपति का दौलती उसकी माँ से बढ़कर उसके पिता को चाहता है ! न जाने कितने दिनों से दौलती ज्वर से ग्रस्त था। एक रोज़ श्रीपति की आँखों से आँसुओं की झड़ी बँधती देखने पर कहीं दादासाहब को इस बात का पता चला। अपने फ़ैमिली डॉक्टर को साथ लिए वे श्रीपति के घर पहुँचे। दौलती उस समय होश में नहीं था। ज्वर की बेहोशी में भी वह एक ही रट लगाये था—‘ क्या पिताजी आ गए ? क्या पिताजी आ गए ?..... ’ श्रीपति की स्त्री को सांत्वना प्रदान करने के लिए दौलती को चुप कराना ज़रूरी था। पड़ोस के किसी बूढ़े ने दौलती के माथे पर हाथ रखकर कहा—‘ देखो, मैं आ गया हूँ बेटा ! अब चुप रहो ! ’ लेकिन बेहोशी के बीच ही बूढ़े के उस हाथ को दौलती ने ज़ोरों से झटककर एक ओर हटा दिया। तब तक श्रीपति दरवाज़े तक आ पहुँचा था। वह दौड़ता हुआ उसके पास जा पहुँचा और मुँह से बिना एक शब्द भी निकाले उसने दौलती के माथे पर हाथ रख दिया। बस— — ‘ पिताजी.....मेरे पिताजी..... ’ कहकर मारे खुशी के दौलती चीख पड़ा।

दूसरे ही क्षण, डॉक्टर के साथ भीतर प्रविष्ट होते हुए दादासाहब ने इस दृश्य को देखा और सहसा उन्हें उत्तर—रामचरित के तीसरे अंक का स्मरण हो आया। उत्तर—रामचरित उनके पिता का अत्यन्त प्रिय नाटक था। उस नाटक के तीसरे अंक में सीता मैथ्या के—जो छाया रूप से वहीं पर संचार करती थी—स्पर्श का अनुभव करते ही मूर्छा—ग्रस्त रामचंद्र जी को अकस्मात् चेतना प्राप्त हो जाती है.....ठीक उसी तरह दौलती.....

अपने पुत्र के प्रति श्रीपति का असीम स्नेह दादासाहब को याद हो आया। उन्होंने सोचा, अब आज रात घर जाने में देर होगी यह सोचकर श्रीपति दिल ही दिल में झल्ला पड़ेगा। मुँह से तो वह कुछ न कहेगा लेकिन किंचित् रूढ़ता का का प्रदर्शन करते हुए नीचे की ओर गर्दन झुकाए यहाँ से वह चल देगा। लेकिन उनके अनुमान के विपरीत श्रीपति वहाँ से गया नहीं। पल भर रुककर प्रसन्न भाव से उसने कहा—‘ गाँव ही के मंदिर में क्यों ? आज तो सौ पचास

मल की दूरी पर स्थित किसी मंदिर में दर्शन के लिए चलना हो, तब भी मैं तैयार हूँ सरकार ! अब मेरी गाड़ी कोई मामूली गाड़ी थोड़े ही है ! वह तो अब सोने की गाड़ी बन चुकी है !’—

दरवाजे की सीढ़ियों से मुड़कर श्रीपति जब तक उनकी आँखों से ओझल नहीं हो गया तब तक दादासाहब उसकी ओर देखते ही रहे। उन्होंने सोचा, पानी से भरी गगरी माथे पर लेकर यदि कोई अल्हड़ युवती नाचने लगे तो गागर से छलकते हुए पानी से जिस तरह वह भीग जायेगी वही हालत आज इस घर के हर एक व्यक्ति की होने वाली है। और यही कारण था कि वे श्रीपति के साथ जी खोलकर इस तरह गप्पें लड़ा रहें थे कि जैसे किसी बराबरी वाले मित्र से बातचीत कर रहे हों। दिल में न समाने वाली यह खुशी...यह खुशी नहीं, यह तो खुशबू है ! इस खुशबू के कारण आज उनका समूचा बंगला महक उठेगा ! और इसी नशा का सूरुर आँखों पर चढ़ जाने के कारण श्रीपति ने भी कहा कि — ‘अब मेरी गाड़ी कोई मामूली गाड़ी नहीं है, वह तो अब सोने की गाड़ी बन चुकी है !’

आँखें मूँदकर पलंग पर लेटे दादासाहब के कानों में सड़क पर सुनाई देने वाली सम्मिश्र ध्वनियों में वही शब्द बार बार गूँजने लगे — ‘सोने की गाड़ी..... सोने की गाड़ी.....ठेला.....बैलगाड़ी.....तांगा.....सोने की गाड़ी....’

दादासाहब की आँखों के सामने अतीत के चलचित्र दिखाई देने लगे। जिस रोज़ उन्होंने बी. ए. की परीक्षा पास की उस रोज़ की घटना है। पिता के चरण छूने के लिए उनके कमरे में वे गए। दादासाहब को सीने से लगाकर, उन्हें आँसुओं से नहलाते हुए पिता ने कहा — ‘दादा, बुद्धिमान् होते हुए भी ज़िंदगी भर मुझे मज़बूरन मास्टरी करनी पड़ी। खैर, मैं तो किसी प्रायमरी स्कूल का मास्टर बना लेकिन तुम अब किसी भी हाईस्कूल के हेड मास्टर बन सकोगे। फिर भी, इस बात को कभी मत भूलना कि मैं चाहता हूँ कि अब तुम्हारा पुत्र प्रोफेसर बने। बेटा, मेरी ज़िंदगी का सफर मैंने बैलगाड़ी में बैठकर किया है। जीवन में मुझे कई करारी चोटें रहनी पड़ीं। उन्हें सहते हुए मेरी देह इस कदर कमज़ोर हो चुकी है कि अब इस बुढ़ापे में मैं उन्हें और बरदाश्त न कर सकूँगा। ज़िंदगी भर मैं इस बात से सतर्क रहा कि बैलगाड़ी की यह मुसाफरी—जैसी कि मेरे भाग्य में बदी थी—इसका अनुभव तुम्हें कभी न करना पड़े। सोने की गाड़ी न सही, मामूली तांगे की तो सैर तुम कर सकोगे। आज मैं पितृकृण से मुक्त

हो चुका हूँ। जिस रोज़ तुम्हारा पुत्र प्रोफेसर बनकर मोटरों में सैर करेगा तब इस पितृऋण से तुम मुक्त हो सकोगे। वैसे तो जीवन में भाँति भाँति के ऋण होते हैं जिनसे उऋण होना यह मनुष्य का परम कर्तव्य है। देश का, धर्म का, कुल का... लेकिन इन सब से महान् होता है पुत्र का ऋण। उस ऋण से मैंने अब छुटकारा पाया है। तुमने बी. ए. पहले दर्जे में पास किया। बेटा, यह शुभ घड़ी देखने के लिए आज यदि तुम्हारी माँ ज़िंदा रहती तो तुम्हारी उपस्थिति ही मैं—तुम्हारे सामने ही, उसके गले से लिपटकर मारे खुशी के मैं आँसू बहाता.....’—

अतीत की स्मृतियों के चलचित्र समाप्त हुए। दिल के दीये दुबारा जल उठे।

दादासाहब ने सोचा कि आज यदि उनके पिता जीवित रहते तो उनके चरणों की धूलि लेकर वे सगर्व वहते—‘पिताजी, आप चाहते थे न कि आप का पौत्र मोटर में सैर करे ! तब देख लीजिए—आज रात भगवान के दर्शन के लिए मोटर में बैठकर हम लोग मंदिर जाएंगे। आँखें भरकर देख लीजिए। आप का पौत्र मोटर में—मंत्री की मोटर में बैठकर जाएगा। सोने की गाड़ी में बैठकर जाएगा वह ! आप का पुत्र अब स्कूल मास्टर नहीं है पिताजी, और न तो वह वकील है। वह तो अब मंत्री बन गया है ! जानते हो ? मंत्री ! मैं जब कालिज में पढ़ता था तब अच्छीवाली धोतियाँ मेरे लिए रखकर आप घर में फटी पुरानी धोतियाँ पहनते थे। आपको खाँसी की शिकायत थी। कई वर्षों से आप कामना करते रहे कि अपने लिए एक ऊनी शाल खरीदा जाय ! लेकिन मेरी कालिज की पढ़ाई, मेरी बीमारी, किसी न किसी वजह से आप का वह इरादा अधूरा ही रह गया। ...अब कहिए पिताजी, कहिए...कितने रुपयों वाला शाल आप चाहते हैं ? सौ रुपयों वाला ? दो सौ वाला ? लीजिए ! ना, ना पिताजी, यह न होगा। इस वजह से कि यह शाल कीमती है आप इसे जतन से संदूक में बन्द कर रखना चाहेंगे पर मैं इसे संदूक में रखने न दूँगा। इसे ओढ़कर आप आराम से लेट जाईए।...आप की चरण-सेवा करते हुए मैं आप के निकट बैठा रहूँगा। जानते हो किस तरह ? जब मैं अंग्रेज़ी दूसरी कक्षा में पढ़ता था और उस रात आप मेरे सिरहाने नहीं आ बैठे थे ? बिल्कुल उसी तरह !.....

पलभर में दादासाहब के सन्मुख वह मध्यरात्रि खड़ी हो गई। उस वक्त दादा की आयु लगभग दस या बारह साल की होगी। जब वह पाँच वर्ष का था तब ही उसकी माँ का स्वर्गवास हो चुका था। उसके पिता, स्वयं अपने हाथों राँधकर

उसे खाना खिलाया करते और ठीक समय पर उसे स्कूल भेजते। लेकिन घर और स्कूल का काम एक साथ करने के कारण उनकी दुर्बल देह और भी ज़्यादा कमज़ोर होती जा रही थी। कभी कभी उन्हें ख़ाँसी का दौरा सा हो आता और कई बार तो दादा को चार चार रोज सिर्फ़ खिचड़ी खाकर ही रहना पड़ता। उस वक्त दादा अंग्रेज़ी स्कूल में, दूसरी कक्षा में पढ़ता था। स्कूल में किसी धनवान के पुत्र के साथ उसकी दोस्ती हो गई थी। बीच की छुट्टी में हलवाई की दूकान पर जाकर लड्डू, सेव, भाजिया आदि चाट की चीज़ें खरीदने के लिए उस लड़के की माँ उसे रोज़ चार आठ आने दिया करती थी। चार पाँच बार वह लड़का दादा को भी अपने साथ ले गया। चटपटी चीज़ें खाने की दादा को लत सी लग गई। लेकिन रोज़ रोज़ वृत्ते के जैसा दुम हिलाते हुए उस लड़के के पीछे जाना उसे अखरने तो लगा पर छुट्टी में चाट खाने न मिलने पर, बाद के घंटों की पढ़ाई में उसका चित्त उचट सा जाता। वह बेचैन हो उठता। भूगोल के मास्टर नक्शे पर कोई गाँव बताने लगे कि दादा की आँखों के सामने मिठाई की दूकान में रखा चिउड़े का थाल और उसकी ओर इशारा करनेवाला वहाँ का गूंगा लड़का खड़ा हो जाता। धीरे धीरे पढ़ाई से उसका चित्त हटने लगा। क्लास में उसका नंबर बराबर नीचे जाने लगा। दादा ने सोचा कि बीच की छुट्टी में चाट खाने न मिलने के कारण ही पढ़ाई में उसका मन नहीं लगता है, इसलिए जब तक यह आदत नहीं छूटती तब तक घर से कुछ पैसे चुरा लाकर किसी वक्त मिठाई वगैरह खा लेने पर कुछ ही दिनों में यह आदत अपने आप ही छूट जायगी...पिता की जेब से वह पैसे चुराने लगा। शुरू में इकट्ठी, बाद में दुअन्नी...अठन्नी...

लेकिन पाप की भूख एक दो निवालों से कभी शांत नहीं होती है वरन् वह तो बढ़ती ही जाती है। दादा ने एक रोज़ पिता के संदूक से दस रुपये का नोट निकाल लिया। दादा के पिता की अवस्था ठीक वैसी हो गई जैसे किसी सरकारी खज़ाने पर डाका गिरा हो। वे घंटों सोचते रहे पर उन्हें याद न आया कि स्वयं उन्होंने किसी को वह नोट दिया हो। अचानक उनके मस्तिष्क में एक आशंका निर्माण हो गई। दादा की पढ़ाई की भेज खोलकर उन्होंने देखा, उसमें सात रुपये पाँच आने उन्हें मिले। दादा को अपराध स्वीकार करना ही पड़ा। पिता क्रोध से आगबवूला हो गए। उन्होंने दादा को बुरी तरह से पीटा। उसके गाल हरे नीले हो गए। उस रात, बिन एक दूसरे से बातचीत किए पिता पुत्र

भूखे ही सो गए। दादा फूटफूटकर रोते हुए नित्य की अपेक्षा जल्द ही सो गया था। लेकिन आधी रात के समय किसीको सिसकते हुए सुनकर वह चौंकर जाग उठा। आँखें खोलकर उसने देखा तो अपने पिता को सिरहाने बैठकर अपनी देह पर वत्सल भाव से हाथ फेरते हुए पाया। उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी सी लगी थी।

दादा को जग पड़ते देख उसके मुँह पर प्यार से हाथ फेरते हुए वे कहने लगे—‘ मैं अपने क्रोध का किसी तरह संवरण न कर सका बेटा। पर बाद में मेरा जी चाहने लगा कि जिन हाथों ने तुम्हें पीटा उन हाथों को आग की लपट में पकड़कर जला डालूँ। इस इरादे से मैंने जलते दीये पर हाथ रख दिए। इन हाथों को जला डालने की कोशिश की, लेकिन तुरन्त मैंने सोचा कि यदि इन हाथों में फफोले आ जाए तो कल तुम्हारे लिए खाना कौन बनाएगा ? ... मैंने तुम्हें पीटा—जानवरों की तरह बेरहमी से तुम्हें पीटा—लेकिन वह पिटाई तो तुम्हारी भलाई के ही लिए थी। मेरे मन की व्यथा का आज तुम अनुभव न कर सकोगे, लेकिन भविष्य में जब तुम स्वयं पिता बनोगे...तब ही ... दादा, गुलाब के सुंदर पौधे में न जाने कैसे कीड़ा लग जाता है; लेकिन कीड़े के लगते ही पौधे से उन टहनियों को काट डालना अनिवार्य हो जाता है। वरना वह पौधा—वह पौधा मर जाता है। मनुष्य का दिल भी ऐसा ही होता है बेटा। गत वर्ष हम देहात वाले अपने घर गए थे—तब दीमक ने अपना मकान किस तरह बरबाद कर डाला यह तो तुमने देखा ही है। इस बात को कभी मत भूलना कि किसी भी तरह का मोह उस दीमक के जैसा होता है। आज वाला मोह कल पाप का रूप धारण कर लेता है। चुरा लुकाकर, भीतर ही भीतर से वह मनुष्य को कुरेदता रहता है। उसकी आत्मा के रेशमी वस्त्र की वह धजियाँ बना डालता है—मनुष्य को खूँख्वार दरिद्र बना देता है। मेरा यह परम कर्तव्य है कि मेरे पुत्र को पशु बनने से पहले, समय ही पर मैं रोक लूँ ! मेरे पुत्र को चाहिए कि वह मानव बने—देवता—तुल्य मानव बने और इसीलिए बेटा, जब मैंने...’ उनका कंठ रुँध गया—उनसे अधिक कहते न बना, एकाएक दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँककर वे रो पड़े। दूसरे ही क्षण वे दादा के पैर छूने लगे। उनकी वह असहनीय व्यथा—उनका वह दुख दादा से देखा न गया। दादा झट उठकर खड़ा हुआ और अपने पिता के गले से चिपक गया। एक दूसरे के आँसुओं से दोनों के हृदय का

दाह धीरे धीरे शांत हो गया ।

मन का आवेग कुछ कम हो जाने पर दादा को अपने साथ लिए उसके पिता रसोई-घर के उस कोने में गए जहाँ पर भगवान की छोटी छोटी मूर्तियाँ रखी थीं । दादा ने सोचा कि भगवान के सामने अपने अपराधों की क्षमा माँगने के लिए पिताजी उसे यहाँ ले आए हैं । भगवान के सामने नाक रगड़ते हुए उसने कहा—‘ प्रभो, मुझसे ग़लती हो गई । दुबारा मैं ऐसी मूर्खता कभी न करूँगा । ’ वहाँ से उठकर वह अन्यत्र जाने लगा पर उसके पिता उसका हाथ पकड़ कर उसे लोकमान्य तिलक जी की तस्वीर के सामने ले गए जो उसी कमरे की दीवार पर लगी थी । उस फोटो को प्रणाम करने के लिए उन्होंने दादा से कहा । उस तस्वीर के सन्मुख हाथ जोड़कर दादा खड़ा हो गया तब उन्होंने कहा—‘बेटा, यह कभी न भूलना कि इस महापुरुष के देश में तुम पैदा हुए हो । बेहतर है कि तुम भी मुझ जैसे गरीब-निर्धन स्कूल मास्टर बनो, पर किसी हालत में सत्चाई का—सत्य का त्याग न करा, कर्तव्य के प्रति कदापि मुख न मोड़ो, मोह के शिकंजों में कभी न फँसो । यह महापुरुष सोने की पालकी में कभी न बैठ पाया तब भी उसका सिंहासन तीस करोड़ जनता के हृदय में है । सोने की पालकी में बैठकर इठलाने वाले नरेश इसके पैरों तले की धूल की भी बराबरी नहीं कर सकते !...’

दादासाहब की आँखों के सन्मुख तेज़ी से दिखाई देनेवाला वह चल-चित्र एकाएक बीच ही में बंद हो गया ! उनके बचपन में वे ब्राह्मण-मोहल्ले के उस मकान में रहते थे तब मसहूरियों का व्यवहार नहीं किया जाता था । बिस्तर पर लेटते ही कानों के पास मच्छर गुनगुनाने लगते । उन्हें प्रतीत होने लगा कि जैसे इस समय भी, उसी तरह कोई उनके कानों के गिर्द गुनगुना रहा है । आरम्भ में उस गुनगुनाने का आशय उनकी समझ में न आया—बाद में वे ग़ौर से सुनने लगे । ‘ ... सोने की पालकी...सोने की गाड़ी...सोने की पालकी ! ... ’

अब कहीं उन्हें ज्ञात हुआ कि इन शब्दों का उच्चारण उनके अंतर्मन के द्वारा हो रहा था । उन्हें हैरानी सी मालूम होने लगी । दुख के समान सुख के कारण भी मनुष्य की बेचैनी बढ़ जाती है और उसका चंचल मन कहीं भी—विगत स्मृतियों के बीच उलझा रहता है ।

पत्नी, लड़के और लड़कियों पर वे बेहद झुंझला उठे । उन्होंने सोचा, यदि

असम आनंद के इस अवसर पर उनमें से कोई भी घर पर रहता तो विगत-स्मृतियों की इस बाढ़ में उनको इस तरह प्रवाहित न होना पड़ता। संध्या-समय होते ही जिस तरह परिदों के घोंसलों में मंजु-कूजन आरंभ होता है, उसी तरह उनकी लड़कियाँ आज यदि घर पर होती तो निष्प्राण से प्रतीत होनेवाले इस बंगले में मानो नवजीवन संचारित हो उठता। उनकी कमा अव्वल दर्जे की खुश-मिजाज लड़की है। वह उनसे कहती—‘दादा, आज आपने मंत्रीपद ग्रहण किया है, अब कल कच्छरी से आपके घर आजाने पर, जनते हो माँ का पहला सवाल कौनसा होगा? शान के साथ वे पूछेंगी, —‘प्रधान जी, राज-काज किस तरह चल रहा है?’ उनकी मँझली लड़की निमा ज़्यादा बातुनी तो नहीं है, लेकिन उसकी आवाज बड़ी ही सुरीली है। मुँह से बिना एक शब्द भी निकाले वह उसके अपने कमरे में चली जाती और झट हार्मोनियम पर बैठकर गाना गाने लगती —‘प्यारा प्यारा आया है आनंद का दिन—’ और छोटी लड़की पमा। इन दोनों से उम्र में वह छोटी है। कमा और निमा किसी पंछी जैसी है तो तितली सी है उनकी पमा ! !—प्यार से उनकी गोद में बाधा रगड़कर वह कहती—‘दादा, अब तो मैं हीरे के झुमके लूँगी। वर्ना मेरी सहेलियाँ मेरा मजाक उड़ाएंगी। कहेंगी—‘हाय दैया’। पिता के मंत्री बनने पर भी इस बेचारी के कानों में अब तक मूर्तियों ही के झुमके दिखाई दे रहे हैं।’

जब भी देखो, ज़िद करते समय, बिल्ली के बलुंगड़े जैसी वह अपना माथा उनकी गोद में रगड़ने लगती है। तुतलाते हुए, मुँह ही मुँह में वह बात करती है। उसकी मर्जी के खिलाफ़ जवाब पाते ही—‘हटिये भी, आज हम आप से बात ही नहीं करेंगे—’ कह कर मुँह फुलाए वह एक कोने में जा बैठती है। मुग्ध प्रमिला की इन सब बाल-सुलभ चेष्टाओं को दादासाहब मानो प्रत्यक्ष देख रहे थे।

कुहरें के विनष्ट होते ही, धुंधली सी दिखाई देनेवाली चंद्रिका जिस तरह उज्ज्वल नज़र आने लगती है और दशों दिशाओं में जूही-चमेली के फूलों की वृष्टि हो जाने का आभास होने लगता है, उसी तरह दादासाहब का अंतरंग सहसा उल्लसित हो उठा।

विस्तार से उठने की उन्होंने कोशिश की। लचक का प्रभाव अब कुछ कम पड़ गया था। उन्होंने सोचा—भावुकता यह भी एक मानसिक विकृति है। कुछ ही समय पहले किसी ने कहा था कि उनको प्राप्त यह मंत्रीपद उनके पिता

की तपस्या का फल है। पर यह कथन पूर्णतया यथार्थ नहीं है। उनकी माँ का स्वर्गवास हो जाने पर, सौतेली माँ वहाँ पुत्र को—उनको—तकलीफ न दें इस विचार से उनके पिताने दुबारा विवाह नहीं किया। एक बार उन्हें राजासाहब के यहाँ से निमंत्रण आया था; लेकिन इस श्रद्धा से कि उनके अपने पुत्र की पढ़ाई की ओर लापरवाही कर—सिर्फ रुपयों की लालच में आकर दूसरे के पुत्र को पढ़ाना यह पाप है—वहाँ जाने से उन्होंने इनकार कर दिया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिता के इस त्याग ही के कारण उनके लिए बी. ए. पास करना आसान हुआ।

लेकिन इसके अनंतर की तपस्या? वह तो स्वयं उन्हीं को करनी पड़ी। उनके जीवन—मंदिर की नौव अवश्य उनके पिताजी के हाथों डाली गई, लेकिन उस मंदिर पर मंत्रीपद का यह स्वर्ण—कलश तो उनकी ही कार्य—कुशलता के फल—स्वरूप जगमगा रहा है। अँग्रेजी स्कूल का हेड मास्टर बन कर उसी में संतोष मानने के लिए पिताजी उपदेश देते थे। लेकिन उसे न मानकर मास्टरी करते हुए एल्ल. बी. का टर्म किसने पूरा किया? रात को रात न मानते हुए, जो तोड़कर पढ़ाई किसने की? एल्ल. बी. पास करने पर यहीं के एक वकील साहब की लड़की के साथ उनके ब्याह की बात—चीत चलने लगी। लड़की अधिक सुन्दर तो नहीं थी, पर वह काफी पढ़ी लिखी थी। पिताजी नहीं चाहते थे कि इतने बड़े घर की लड़की उनकी पुत्रवधू बनें। यह रिश्ता उन्हें साफ़ साफ़ नापसंद था। उनकी इच्छा थी कि किसी गरीब खानदान की लड़की के साथ ही लड़के का ब्याह हो। यदि उस वक्त ये उनका कहना मान लेते तो

तो न जाने मंत्रीपद उन्हें प्राप्त होता या नहीं! उनके ससुर अक्वल दर्जे के वकील थे। इसी कारण थोड़ी ही अवधि में उनको प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकी। बाद में उनकी देशसेवा का आरंभ हुआ। पत्नी के सुविध्य होने के कारण उनका नाम और भी ज्यादा चमक उठा। कुछ दिनों पहले यहाँ पर गांधीजी का आगमन हुआ था। सभा में जैसेही गांधीजी ने चंदे की माँग की, खट्टर की पोशाक पहने उनकी श्रीमती जी ही सर्व प्रथम सभामंच पर गई और अपने हाथों के सोने के कंगन निकाल कर उन्होंने गांधीजी को भेंट किए। तालियों की प्रचंड गड़गड़ाहट से संपूर्ण सभागृह गूँज उठा। तुरन्त वहाँ की स्त्रियों को लक्ष्यकर मंनक जी ने एक छोटी सा स्पीच भी दे डाली। उस स्पीच से प्रभावित होकर गरीबों

की स्त्रियाँ भी झटझट आगे बढ़ी—देखते ही देखते गांधीजी के सामने चंदे का ढेर सा इकट्ठा हो गया। इस बात पर गांधीजी ने स्वयं उन्हें शाबाशी दी। इस बात को वे कैसे भुला सकते हैं कि उनकी सुसंस्कृत पत्नी ही के कारण उस दिन का समारोह सुचारु—रूप से संपन्न हो पाया था। उन्होंने एक दिन पहले स्पीच की प्रैक्टिस दी थी, लेकिन तब भी क्या हुआ? किसी डरपोक और अनपढ़ लड़की के साथ यदि उनका ब्याह होता तो रातभर रटाते रहने पर भी यह कार्य उससे कदापि संपन्न न होता !.....

दादासाहब पलंग से उठ खड़े हुए। अब उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि जिस मकान में उनके पिता का देहान्त हुआ था, भावुकता के आवेग में उस मकान का दर्शन करने के लिए वे वहाँ पर न जाते तो कितना अच्छा होता ! तालाब में तैरने वाला व्यक्ति चाहे कितना क्यों न कुशल तैराक हो, पर एक बार उसके पैर जल—वनस्पतियों में उलझ गए कि वह तो उसे ले ही हूबती है। विगत—स्मृतियों की भी यही बात है। अनजाने ही मनुष्य उनके उलझाव में फँस जाता है, उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे वह कोई भयानक स्वप्न देख रहा है—वह अनुभव करने लगता है कि जैसे उसके पुराने घाव ताज़ा हो उठे हों। इस समुचे दृश्य को देख वह सकपकाने लगता है। गत—जीवन की, दुख—दैन्य—दरिद्रता की स्मृतियों के कारण उसके अंतर को अकारण ही उदासीनता की परछाइयाँ व्याप्त कर लेती हैं।

दादासाहब ने अँगड़ाई ली। मानो बड़ी देर से उनके मन में अजीब सी बेचैनी पैदा कर देने वाली और उन्हें बेकार ही परेशान करने वाली उन सब विगत स्मृतियों को वे झाड़ देना चाहते थे।

आगे बढ़कर उल्लसित दृष्टि से उन्होंने खिड़की के बाहर झाँककर देखा। उनके चित्त में एक अजीब सी कल्पना का निर्माण हुआ। पूर्णमासी की स्निग्ध चंद्रिका का सागर क्षितिज के उस पार तक लहरा रहा था। सुदूर के खपरैल वाले मकान ऐसे दिखाई दे रहे थे कि मानो इस स्पहले दरिया में वे छोटे छोटे द्वीप ही बने हों ! मानो शांति की देवी स्नान करने के हेतु इस सागर में उतर पड़ी हो और जलक्रीड़ा करते समय उसके उछाले हुए जल—तुषार धुंधले से तारों के रूप में नभ—मंडल में झिलमिला रहे हों।

कालिज के समय की अपनी काव्य—प्रतिभा को इतने दिनों बाद जागृत होते

देख दादासाहब अपने आप मुस्करा उठे। उन्होंने सोचा कि आज उनका यह खूबसूरत बंगला बाहर से, श्वेत-सरोवर में खिले किसी कमल-पुष्प के समान दिखाई दे रहा होगा ! इस कल्पना से उनका हृदय गर्व से प्रसन्न हो उठा।

खिड़की की ओर पीठ किए वे दुवारा कमरे में लौट आए। तेज़ी के साथ जाकर एक एककर सभी कमरों की बातियाँ उन्होंने जला दीं। विद्युद्दीपों की रोशनी में समुचा बंगला जगमगाने लगा। दरवाज़ों पर लगे रेशमी परदे, विभिन्न कोनों पर रखे बूटीदार फूल-दान, हर एक कमरे का अद्यतन फर्नीचर, दीवार पर लगे क्रीमती सुंदर चित्र, ये सब उन्हीं की बुद्धि ही का विलास है, यह सब उन्हीं के पुरुषार्थ ही का फल है ! इस विचार से उनका अंतःकरण झूम उठा। उनका हृदय प्रकाशमय हो गया।

मुस्कराते हुए वे लड़कियों के कमरे में प्रविष्ट हो गए। सामने ही तीनों लड़कियों की एक बड़ी सी तस्वीर दीवार पर लगी हुई थी। खज्जोची फिल्म के साथ ही साथ उस में अभिनय करने वाली लड़कियों का पंजाबी पहनावा भी महाराष्ट्रीय लोगों को पसंद आया था। वह फोटो तभी की निकाली हुई थी। उन्हें इस बात का स्मरण हो आया कि तीनों कन्याओं के लिए खास पंजाबी फैशन के कपड़े सिलवाकर उनकी पत्नी ने वह तस्वीर खिंचवाई थी। पत्नी के शौक्तीन मिजाज और उनके अनुशासन पटुता की दादासाहब हमेशा तारीफ़ ही किया करते थे। उन्हें एकबार की घटना याद हो आई। कुछ दिनों पहले कोई मशहूर देशभक्त उनके यहाँ मेहमान बनकर आये थे। भोजन के समय, चमचमाने वाले पानी के लोटे की ओर देखकर उन्होंने कहा — ‘दादासाहब, भेरे ख्याल से आपके यहाँ शायद अन्य किसी शीशे की जरूरत ही न पड़ती होगी।’ इस तारीफ़ को सुनकर उनकी पत्नी का रोम रोम प्रसन्न हो उठा था। पत्नी के इस तरह कार्य-कुशल होने के कारण ही वकीली और देशभक्ति के अतिरिक्त, गृहस्थी में अन्य किसी भी झंझट की ओर ध्यान देने का उन्हें जरूरत ही न पड़ी। बच्चों के बीमार हो जाने पर डॉक्टर को वे ही बुला भेजती हैं। हर एक लड़की की पढ़ाई के लिए किस शिक्षक को नियुक्त किया जाय यह भी उन्हीं की मर्जी पर निर्भर रहना है। कुछ दिनों की बात है जब कि भैय्या मैट्रिक की क्लास में पढ़ता था। वह नक़ल करते हुए पकड़ा गया था। उसके स्कूल का हेड् मास्तर प्रति दुर्वासा था। भैय्या को स्कूल से निकाल देने पर वह तुल गया। उससे मुलाकात करने के लिए स्वयं

श्रीमतीजी ही स्कूल गई। न मालूम उन्होंने किस इंद्रजाल का प्रयोग किया कि भैया का अपराध मामूली करार दिया गया और स्कूल में दुबारा पढ़ने की इजाजत उसे मिल गई। इस तरह, उनकी चतुर पत्नी ने बदनामी से उनको बचा लिया। यदि कोई ऐसा कहे कि आज उनको जो यह सम्मान प्राप्त है उसमें उनके पिताजी से बढ़कर उनकी पत्नी का हिसा है.....लेकिन और किसी के कहने की जरूरत ही क्या है? आज जब उनका प्रथम सत्कार-समारोह होगा उस समय सभामंच से भाषण देते हुए श्रीमतीजी की ओर देखते हुए वे स्वयं अपने ही मुँह से इस बात को स्वीकार कर लें तो हर्ज ही क्या है? उनकी स्वीकारोक्ति पर सभागृह कहकहे और तालियों से गूँज उठेगा।...

कानों में गूँजने वाली तालियों की उस प्रचंड ध्वनि को सुनते हुए कन्याओं के कमरे से निकलकर दादासाहब ने भैया के कमरे में प्रवेश किया। दिल को लुभानेवाला वहाँ का ठाठबाठ! दीवार पर लगे फिल्मी अभिनेत्रियों के वे उन्मादक चित्र-दादासाहब ने सोचा, इनमें से कितनों के नाम तक का उन्हें पता नहीं है। वहाँ पर एक कोने में रखी व्हीनस की सुंदर मूर्ति...दीवार से टँगा वह टेनिस का रैकेट.....रंगबिरंगी नेकटार्ड.....काँच के पेपरबेट के नीचे से दिखाई देने वाली वह नम्र युवती.....जमाना भी कैसे झटपट रंग बदलता है! उनकी विद्यार्थीदशा में इन में से एक भी बात.....

उनकी निगाह कोने पर रखे ग्रामोफोन पर गई। भैया ने उसे बंद भी न किया था। निकट जाकर उन्होंने देखा, ग्रामोफोन पर रिकार्ड भी चढ़ा रखा था। उन्होंने चाधी भरना शुरू किया, दिल में कहकर कि - 'कई दिनों से गाना नहीं सुन पाया है, ' उन्होंने रिकार्ड पर सुई रख दी। पल भर में गीत के शब्द सुनाई देने लगे - 'ओ मेरे जोबना का देखो उभार - ओ पापी...ओ पापी...जोबना का देखो उभार.....'

उन्होंने झट रिकार्ड से सुई उठाकर गाना बंद कर दिया। उनकी समझ में नहीं आया कि यह गाना किस फिल्म का है और कथा-वस्तु से उसका क्या संबंध है। जो भी हो। गीत की वह पंक्ति दादासाहब को कतई नहीं जँची। उन्होंने सोचा, कोई निर्लज्ज स्त्री अपने यौवन का इस प्रकार उन्मत्त प्रदर्शन करे इसमें कौनसा काव्य भरा है? और ऐसे गीत भैया को पसंद आए यह बात.....।

तुरन्त उन्होंने सोचा कि इस विषय में उनका दृष्टिकोण बिल्कुल पुराना है

और शायद इसी वजह से उनकी विचार-धारा में यह परिवर्तन हो गया हो। हर एक पीढ़ी की रूचि में विभिन्नता होती है। संगीत में—भोजन में—पहनावे में—किताबों में—और उनके भैया को तो बचपन ही से संगीत और अभिनय से असीम अनुराग है। दीवार पर लगी चार पाँच तस्वीरों की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। दस ही वर्ष की उम्र में, स्कूल के गैदरिंग के अवसर पर भैया ने अपने एक अध्यापक की हूबहू नकल उतारी थी। बाद में उनकी पत्नी ने वही नकल करते हुए भैया की तस्वीर खिचवाई थी। स्कूल के गैदरिंग में होने वाले नाटक में भैया जब भी काम करता तब उसकी देहद तारीफ़ हुआ करती। उनके यहाँ किसी भी मेहमान के आने पर उनमें कोई खामी हो, तो वह पहले पहल भैया ही को दिखाई देती है। और बाद में उसे लेकर वह इतनी अच्छी नकल कर दिखाता है कि.....युरप, अमेरिका जैसे देश में यदि वह पैदा होता तो जाने कब का मशहूर ऐक्टर बन जाता...खैर। अब उनको मंत्रीपद प्राप्त हुआ है और भैया भी हालीवुड जाना चाहता है...देखें क्या होता है...

अब उन्होंने अपनी पत्नी के कक्ष में प्रवेश किया। वहाँ जाने पर उन्होंने सोचा, किसी कला प्रदर्शनी में भी इतनी सुरुची-पूर्ण ढँग की सजावट शायद ही दिखाई दें। हर एक चीज़ में कितनी नज़ाकत, कितनी सुंदरता और कितनी सुरुची झलक रही थी ! शीशम के उस सुविस्तृत पलंग पर गुलगुले से दो गद्दों पर हल्के आसमानी रंग के जो पलंगपोश बिछाए गए थे, उनमें भी कितना काव्य भरा था। पहले पलंगपोश पर गुलाब का एक छोटा सा पौधा दिखाई दे रहा था। उस पौधे में लगे नाज़ुक गुलाब के फूल और उनमें के वे काँटे। राजब की कशीदाकारी है ! यदि कोई कल्पक कवि यह सूचित करना चाहें कि दिल को बेचैन बना देनेवाला सुख और मधुर सा प्रतीत होनेवाला दुख इसके सम्मिश्रण ही का नाम प्रेम है—तो वह भी इसके सिवा अन्य कौनसे प्रतीक की सृष्टि कर सकता है ? दूसरे पलंगपोश पर एक विशाल वृक्ष का चित्र दिखाई दे रहा था। उस वृक्ष की एक छोटी सी टहनी पर विपुल पर्ण—राजी की ओट में छिपकर बैठे हुए पंछी एक दूसरे की चोंच में चोंच डालकर प्रणय—कूजन कर रहे थे।...

दादासाहब को अचानक उनके प्रेम-मिलन की वह पहली रात याद हो आई। ब्राह्मण—मोहले का वह टूटाफूटा मकान। वहाँ की वह संकीर्ण कोठरी। कोठरी की वे

रंगहीन, भही सी दीवारें।—वह कोठरी बिल्कुल छोटी सी थी और इसीसे उसमें चारपाई वगैरह का प्रबन्ध करना असंभव ही था...जर्मन पर बिछाया हुआ एक मामूली सा बिस्तर...

उनका अधीर युवा मन पत्नी के अधर में भरे अमृत का स्पर्श करने के लिए लालायित हो उठा था। लेकिन उसी वक्त अनजाने ही उनकी दरिद्रता का स्मरण दिलानेवाला उनका दूसरा मन इस आशंका से आकुल हो रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि उन्हीं होठों से उनकी गरीबी को उलाहना देनेवाला कोई कटु-वचन उन्हें सुनना पड़े...देर तक इंतजार करने के बाद उनकी पत्नी ने चुपके से कोठरी में प्रवेश किया और आहिस्ता से दरवाजा बंद कर लिया। उनके रोम रोम में बिजली नाच रही थी। पल भर के बाद वह उनके निकट आ पहुँची। तब भी उनको मौन देखकर व्याकुल कंठ से उसने पूछा—

‘मुझ से नाराज हो गए...!—क्यों न?’

‘जी—’

‘मैं माफ़ी चाहती हूँ!’

‘कानून इस गुनाह को हरगिज माफ़ न करेगा।’

‘लेकिन मेरा गुनाह भी तो मालूम हो?’

‘आने में कितनी देरी लगा दी तुमने? मैंने सोचा, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे यहाँ आ पहुँचने से पहले ही—तुम्हारे इंतजार ही मैं—बूढ़ा बनकर मैं राम भजन करने लग जाऊँ।’

पत्नी के मुँह पर रक्तिम-आभा फैल गई। अबोध बालक के समान उनकी गोद में मुख छिपाकर वह कहने लगी—‘आज पिताजी को ख़ासी की तकलीफ़ ज़्यादा है। सॉस चलने लगी थी। अलसी की पोलिटिस से उनकी छाती ज़रा सेंक दी तब कहीं उनकी झपकी लगी—पलभर रुककर वह एकाएक सिसक पड़ी—कहा, ‘जानती हूँ कि मैं सुंदर नहीं हूँ। लेकिन ... लेकिन मैं आपकी हूँ ... आपके चरणों की.....’

झट् दादासाहब ने पत्नी का मुख ऊपर की ओर उठाया था—उनकी पत्नी की आँखें सजल हो उठी थीं। दादासाहब प्रेमविह्वल हो गए थे...चुंबन के द्वारा पत्नी का मुँह बंद कर उन्होंने कहा था—‘तुम पढ़ी लिखी स्त्रियाँ हर बात में पुरुषों से स्पर्धा ज़रूर करना चाहती हो, लेकिन इस बात का तुम्हें अक्सर विस्म-

रण हुआ करता है कि पुरुषों की आँखों में हमेशा पराक्रम ही झलकता है और स्त्रियों की आँखों में पानी ! कहने लगी,—‘ मैं आपके चरणों की दासी हूँ ’। लेकिन मुझे चरणों की दासी की जरूरत नहीं है...मैं नहीं चाहता कि मेरी स्त्री सब कष्ट, तकलीफों को चुपचाप बरदाश्त कर लें और संत सखुबाई बने। मैं तो चाहता हूँ कि वह सरोजिनी नायडू बने। तुम जैसी यह क्रीमती अमानत..... तुम्हारे पिता मुझको सौंप गए हैं। जिस तरह मेरे पिता के ऋण से मुक्त होना मेरा कर्तव्य है उसी तरह तुम्हारे भी पिता के ऋण से मुक्त होना यह भी मेरा परम पवित्र कर्तव्य है। जिस रोज मैं मशहूर वकील बँनूंगा, असीम धन अर्जित कर तुम्हारे मायके वालों के समान तुम्हें मालामाल कर दूँगा उसी दिन वह ऋण...’

कमरे की हर एक चीज की ओर सगर्व देखते हुए दादासाहब के दिल में ख्याल आया कि आज यदि उनके ससुर जीवित होते तो उन्हें प्रणाम करते हुए वे अभिमानपूर्वक कहते—‘ मुझे आशीर्वाद दीजिए बाबूजी ! आज मैं आपके ऋण से मुक्त हो चुका ! आपकी यह कन्या अब तक केवल एक धनी वकील की कन्या ही थी लेकिन अब वह एक मंत्री की पत्नी बनी है। वह केवल गृहस्थी ही के बीच उलझकर नहीं रही है, उसने समाज का भी ऋण चुका दिया है...किसीसे भी पूछ लीजिए...’

कृतकृत्य हो जाने की भावना से दादासाहब का अंतःकरण हर्षोन्मत्त हो उठा। सभी कमरों में वे चहल कदमी करने लगे। उनके बंगले की सुविस्तृत खुली खिड़कियों से, सब ओर से भीतर प्रविष्ट होकर चाँदनी मुस्करा रही थी। उन्हें प्रतीत होने लगा कि उनका जीवन भी इसी प्रकार शोभायमान हो गया है। उनके जीवन के वातायनों से भीतर प्रविष्ट होनेवाली कौमुदी का उनके ऊपर अभिप्रेक हो रहा है। पूर्णिमा के अवसर पर सागर के ज्वार से जिस प्रकार संपूर्ण मरुस्थल जलमय हो जाता है उसी तरह उनके अंतर की छोटी बड़ी दुखदाई वेदनाएँ—दरिद्रता की दुःसह स्मृतियाँ, क्षणभर के लिए दिल में निर्माण होनेवाली अमंगल आशंकाएँ—सभी आत्मतृप्ति की इस विशाल बाढ़ में प्रवाहित हो गईं—...

ठंडी हवा के झोंकों से उनका चित्त शांत हो गया। एकाएक उन्हें ख्याल आया कि अब जाड़े का मौसम शुरू हो गया है, संध्यासमय भी हो चुका है, अब स्वेटर पहन लेना चाहिए। किसी सेवक को वे बुलाना ही चाहते थे कि तभी किसी कुशल

नर्तकी के पैरों में हमझुम बजने वाली पैँजन के जैसी, शीतल वायुवाँचियों पर आरूढ़ हो नृत्य के पदन्यास में रातरानी की सुरभि भीतर आ पहुँची। उस सौरभ ने दादासाहब को मतवाला सा बना दिया। जिस वक्त वे जेल खाने में थे तब की एक घटना उन्हें याद हो आई। आंदोलन में हिस्सा लेने वाले किसी कवि ने फबतियाँ कसते हुए कहा था—‘अन्य सब फूलों की खुषबू ऐसी होती है कि मानो कोई वल्लभ अपनी प्रियतमा का चुंबन कर रहा हो, लेकिन इस रातरानी की सुगंध से ऐसा भासमान होने लगता है कि मानो कोई प्रेम-विह्वल रमणी ही अपने प्रीतम के कपोल से अपना कपोल रगड़कर, स्वेच्छा से उसे चूम रही हो।’ उस वक्त तो सिर्फ यह कहकर कि यह एक मजेदार कल्पना है, वे हँस दिए थे, पर आज उन्हें प्रतीत होने लगा कि काव्य में सौंदर्य के साथ सत्य भी अंतर्हित होता है और इसी कारण उनके पिता उत्तरराम-चरित को इतना चाहते थे। शायद उसमें उन्हें उनके जीवन की परछाईं दृष्टिगोचर होती हो—मन में कुछ ऐसा ही सोचते हुए वे उस खुषबू का मनमाना उपभोग करने के लिए बरामदे में आ पहुँचे।

वायुतरंगों के स्वरों में अपने स्वर को मिलाते हुए, मतवाली सी होकर रातरानी की सुगंध नृत्य कर रही थी। दादासाहब ने सोचा कि उनके शरीर में यह सुवासिक उबटन कहीं अप्सराओं ने तो नहीं लगाया है? या नंदन-कानन के गुलाब जल से—जो चन्द्र के कलश में भरा है—कहीं रजनी स्नान तो नहीं कर रही है? उस उन्मादक सुगंध से दादासाहब की देह का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उन्होंने फुलवारी की ओर एक नज़र देखा। उनकी स्त्री की रसिकता पर वे गर्व करने लगे। उनकी श्रीमतीजी ने वहाँ पर भाँति भाँति के विलायती फूलों के पौधे सुचारु ढंग से लगवाए थे। उन पर खिले हुए वे रंगबिरंगे फूल—सिर्फ गुलाब ही के कितने प्रकार थे वहाँ पर! पीले, सफेद, लाल! उस फुलवारी में सिर्फ तुलसी का ही पौधा नहीं दिखाई दे रहा था!

स्त्री के साथ का, एक दिन का विवाद उन्हें याद हो आया। नए बँगले में रहने के लिए आने पर, बगीचे में फूलों के पौधे लगाने के काम का आरंभ हो गया था। दादासाहब चाहते थे कि वहाँ पर एक तुलसी का चबूतरा भी बनवाया जाय। इस पर उनकी स्त्री ने असम्मति प्रगट करते हुए कहा था कि तुलसी के कारण बगीचे की सुंदरता नष्ट हो जाती है। दादासाहब ने दृढ़ स्वर में कहा

था—‘ लेकिन तुलसी पवित्र जो होती है । ’ इस पर उनकी स्त्री ने कहा था—‘तुलसी तो नारी की गुलामी का—पराधीनता का प्रतीक है । एक बार वृन्दा की कथा पढ़ लीजिए तब आपकी समझ में आ जायगा । ’

जंगल से झुककर दादासाहब ने पुष्पवाटिका की ओर देखा । जगह जगह दीप जलाने के बाद श्रीपति को भीतर जाते उन्होंने देखा । कुछ ही क्षणों के अनन्तर हाथ में एक पुष्प—माला लिए वह दुवारा बाहर आ पहुँचा और फुलवारी से बाहर जाकर फाटक के पास खड़ी मोटर को पुष्पमाला से वह अलंकृत करने लगा ।

उस गाड़ी की ओर एक नज़र देखकर भीतर जाते हुए दादासाहब के मस्तिष्क में, श्रीपति के कुछ समय पहले के शब्द गूँज रहे थे — ‘ अब मेरी गाड़ी कोई मामूली गाड़ी नहीं है — वह तो सोने की गाड़ी बन चुकी है । ’

मोटर का हॉर्न सुनते ही चौँक कर दादासाहब ने आँखें खोलीं । पलभर उनकी समझ में नहीं आया कि वे किस स्थान पर हैं । बाद में उन्हें ख्याल आया कि गैलरी से वे भीतर के कमरे में गए थे । कल के चुनाव में क्या होता है इस दुश्चिन्ता के कारण विगत रात उन्हें ठीक से नींद न आ पाई थी । इसके अतिरिक्त आज दिन भर के परिश्रमों के कारण वे थककर चूर हो गए थे और बैठक के कमरे में आकर आरामकुर्सी पर बैठते ही शायद उनकी झपकी लगी थी ।

मधुर झंकार के साथ निनादित हो उठने वाली, दीवार पर लगी घड़ी में उन्होंने देखा — साढ़े नौ बजने को थे ।

मोटर से उतरने वाले लोगों के शब्द उन्हें स्पष्टतया सुनाई दे रहे थे । श्रीपति ने आवाज़ दी थी — ‘ ओ दौलू..... ’ उनकी स्त्री कह रही थी — ‘ कमा, विमा, पमा, अरी सुनो तो । इस तरह चुड़ैलों की सी सूरत लेकर उसने सामने मत जाना..... । ’

पुलकित अंतःकरण से दादासाहब कुर्सी से उठ खड़े हुए । सामने की दीवार पर दो तस्वीरें लगी थीं । एक उनके पिताजी की और दूसरी लोकमान्य तिलकजी की । दादासाहब ने सोचा कि उन्हें प्रणाम करने के लिए लड़ाकियाँ जब ऊपर आएंगी, तब वे कहेंगे— ‘ पहले इन दोनों तस्वीरों को प्रणाम करो ’ । इस विचार से उनके मुख पर प्रसन्नता की आभा दीप्तिमान् हो उठी । तभी अचानक कोने में रखे टेलीफोन की घंटी खनखनाने लगी । दिल ही दिल में वे बड़बड़ाने लगे—शायद बधाइयाँ देने के लिए फ़ोन शुरू हो गया दिया है । अब यह

टेलीफोन तमाम रात बजता रहेगा और उनकी नींद हराम कर देगा ! कुछ झल्ला-हट के ढंग से वे उठे और टेलीफोन के निकट आ पहुँचे।

फोन का चोंगा हाथ में लेकर उन्होंने पूछा — ‘हंलाव । कौन है भाई ?’

— ‘मैं...मैं हूँ मैनेजर — सुभाष होटल.....’ इन शब्दों को सुनते ही दादासाहब खिलखिला कर हँस पड़े । उन्होंने सोचा कि ये व्यवसायी लोग भी कैसे चालाक होते हैं । उनकी सिफारिश के जरिये होटल की इमारत के लिए कोई अच्छी सी जगह मिले इस इरादेसे बधाई देने में मैनेजर साहब किस कदर शीघ्रता कर रहे हैं ! लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा कि सुभाष होटल में खाना खाने के लिए रात के समय नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति इकट्ठा होते हैं—शायद उन्हीं में से कोई उन्हें बधाई देना चाहता हो और यह जानने के लिए कि वे घर पर हैं या नहीं, फोन करने के लिए उन्होंने मैनेजर से कहा हो —

उन्होंने कहा — ‘क्या कोई मुझ से कुछ कहना चाहता है ?’

‘.....जी.....जी मैं ही आपसे कुछ कहना चाहता हूँ’ कंपित स्वर में मैनेजर ने कहा । उनके उस कंपित स्वर को सुनकर दादासाहब ने दिल में कहा — ‘जान पड़ता है कि एक मंत्री महोदय से बातचीत करते हुए मैनेजर साहब की घिग्गी बँध गई है —’

तुरन्त उन्हें सुनाई दिया — ‘साहब, आप वहाँ...मेरा मतलब—कमरे में अकेले ही है न ?’

मुस्कराकर दादासाहब ने मन में कहा, जान पड़ता है जरूर दाल में कुछ काला है । शायद ब्लैक मार्केट वाला कोई मामला है । लेकिन याद रहे बचचू ! यह दादासाहब अपनी जिम्मेदारी को निभाना खूब जानता है । उसकी चरण सेवा करने के लिए स्वर्ग से स्वयं लक्ष्मी जी के उतर आने पर भी वह कर्तव्य से विमुख कदापि न होगा ।

तुरंत फोन पर उन्हें सुनाई दिया — ‘एक भयानक समाचार आपको सुनाना है । कृपया अपने कमरे के सब दरवाजे बंद कर लीजिए.....सब.....मेहरबानी से.....’

‘अजीब आदमी मालूम होता है !’ दिल में बहते हुए उन्होंने दरवाजे भीतर से बंद किए और फोन के पास जाकर कहा — ‘देखिए, जो भी आपको कहना है, झटपट कहिए । मेरे पास वक्त बिल्कुल नहीं है !’

मैनेजर ने उनसे जो कुछ कहा, उसे सुनकर उनका दिल बैठने लगा ! ‘-ऐं ? क्या कहा ?’ इतने ही शब्द भराये हुए स्वर में उनके मुँह से निकल पड़े ! बस ! तीन ही शब्द ! लेकिन उन तीन शब्दों में जैसे त्रैलोक्य की वेदना समाई थी । कसाई की छूरी का स्पर्श होते ही चीख पड़ने वाली भेड़ के जैसी आर्तता उन शब्दों में भरी थी ! विमूढ़ की भाँति वे फोन की ओर देखने लगे । उन्हें प्रतीत होने लगा कि वे एक भयानक स्वप्न देख रहे हैं । वह फोन भी स्वप्न ही में का है और उस फोन पर उन्हें जो कुछ सुनाई दिया है वह सब कुछ उन्होंने स्वप्न ही में सुना है । उस अजीब स्वप्न से छुटकारा पाने के लिए वे छटपटाने लगे ।

दादासाहब को प्रणाम करने के लिए, एक सी गुलाबी साड़ियाँ, कानों में कनेर के फूल जैसे एक ही किस्म के कर्णभूषण और पीठ पर लटकने वाली चोटी में नाजूक गजरे पहनकर सजधज के साथ पमा, विमा कमा उनके कमरे के बाहर आ पहुँचीं । उन तीनों ने कई बार दरवाजा खटखटाया, कमा ने खँसकर देखा, मृदु और मंजुल स्वर में विमा ने मधुर गीत की एक तान छेड़ दी, चुहकने वाली चिड़िया की भाँति ‘-दादा-दादा’ कह पमा ने आवाज दी पर भीतर से उन्होंने कोई जवाब नहीं पाया न दादासाहब ने दरवाजा खोला । कमा ने ऊपर की ओर लगे शीशे में से झाँककर देखा लेकिन उसे दादासाहब दिखाई नहीं दिए । उसने सोचा, शायद कोने में रखी हुई आरामकुर्सी पर लेटे लेटे उनकी झपकी लग गई हों-’

निराश होकर तीनों लड़कियाँ वहाँ से नीचे के कमरे में लौट गईं । अपना साजसिंघार पूरा कर लेने के बाद, दादासाहब की श्रीमतीजी वहाँ पर आरती की तैयारी में व्यस्त थीं । लड़कियों की शिकायत सुनकर वे हँस पड़ीं । उन्होंने सोचा, सच देखा जाय तो सबसे पहले उन्हीं को ऊपर जाना चाहिए था । जान पड़ता है कि शायद उनके न जाने से ही हजरत रुठकर बैठे हैं । लेकिन उनकी नाराज़ी, बात की बात में दूर करने में उन्हें देरी थोड़े ही लगेगी ! उन्होंने झट निरांजन में घी डाला ।

तभी दौलू को साथ लिए श्रीपति भीतर आया और मुस्कराते हुए कहने लगा, ‘ इस मुसाबत को देखिए मालकिन ! घरवाली से यह कहने के लिए मैं घर गया कि आज रात घर लौटने में मुझे देरी होगी, तो यह बला गले पड़ी । आज ही सबेरे से इसने स्लेट पर श्रीगणेशाय नमः लिखना आरंभ कर दिया है ।

घरवाली से मैं खुशी खुशी से कह रहा था कि हमारे सरकार बड़े मंत्री बन गए हैं, तो मेरे साथ चलने की इसने ज़िद पकड़ी। और कह क्या रहा है, तुना आपने ? कहता है.....—‘ मैं यह स्लेट सरकार को दिखाऊँगा और उनके चरणों पर माथा रखूँगा। ऐसा करने से बड़ा होने पर मैं भी सरकार के जैसा मंत्री बनूँगा। देखिए न, कैसा पागल है मेरा दौलू। अब तक तो जैसे तैसे कर उसे बाहर बिठला दिया था लेकिन जब उसने रोना मचलना शुरू कर दिया तब सोचा... ’—

खुशी के समय मनुष्य अनजाने ही उदार—प्रकृति बन जाता है। इसके अलावा मालकिन इस बात को भली भाँति जानती हैं कि दादासाहब का श्रीपति पर प्रगाढ़ प्रेम है। मुस्कराकर उन्होंने कहा—‘ अरे ! तो उसे ले क्यों नहीं जाते ऊपर ? तुम्हारे सरकार बड़े ही प्रेमी हैं। इसकी बातें सुनकर वे बहुत खुश हो जाएंगे। आरती लेकर मैं भी तो आ रही हूँ ऊपर... ’

हाथ में स्लेट लिए चलने वाले नन्हे दौलू को साथ लेकर श्रीपति ऊपर जा पहुँचा। दादासाहब के कमरे का दरवाजा भीतर से बंद देख श्रीपति को विस्मय सा होने लगा। बाहर से, ऊपर की ओर लगे शीशे में से उसने झाँककर देखा—भीतर दादासाहब उद्विग्न से, चहलकदमी करने उसे दिखाई दिए। अपने दोनों हाथों के पंजों को वे एक दुसरे में कसकर पकड़े हुए थे। एकाएक उनके पिता की और लोकमान्य तिलकजी की तस्वीर के सामने वे खड़े हो गए और उन्होंने दनादन चार पाँच तमाचे अपने मुँह पर जड़ दिए और बाद में उन्होंने दोनों हथेलियों में अपने मुँह को ढँक लिया। श्रीपति ने सुना था कि अत्यधिक आनन्द के कारण कभी कभी मनुष्य पागल हो जाता है लेकिन दूसरे ही क्षण उस दृश्य को देखकर वह उलझन में पड़ गया...

दादासाहब को कोट पहनते देख श्रीपति झट पीछे की ओर हट गया।

दूसरे ही क्षण दादासाहब ने धम् से दरवाजा खोला। दीवार पर उसकी धड़ाम से प्रतिध्वनि सुनाई दी। चौंक कर श्रीपति ने सामने देखा। दरवाजे का एक शीशा चटक गया था। श्रीपति को बाहर खड़ा देख भरीए हुए स्वर में दादासाहब ने पूछा ‘—गाड़ी तैयार है ? ’...

श्रीपति ने हाँ में गर्दन हिलाई। तभी पिता की उंगली छोड़कर दौलती आगे की ओर बढ़ा और अपने हाथ में की स्लेट उसने दादासाहब के सामने रख दी।

कुछ सहमते हुए श्रीपति ने कहा—‘ आज सरकार से आशीश माँगने के लिए दौलती आया है। आज ही इसने पहले पहल श्रीगणेशाय नमः लिखने की कोशिश की है और यह पगला कह रहा है कि—‘ मैं भी खूब पढ़ूँगा और सरकार के जैसा मंत्री बनूँगा। ’ तुरन्त दौलती की ओर देखकर उसने कहा—‘ दौलू ! बस खड़े ही रह गए ? सरकार के पैर तो छूओ। ’

दौलती ने फौरन दादासाहब के पैरों पर माथा रख दिया। उसे ऊपर की ओर उठाते हुए दादासाहब के हाथ कैप रहे थे। श्रीपति को डर मालूम होने लगा कि कहीं उन्हें लकवा तो नहीं मार गया ?

दौलती को आशीश देने के लिए दादासाहब ने अपना हाथ बढ़ाया तो सही, लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने अपना वही हाथ इस तेजी के साथ पीछे खींच लिया कि जैसे उन्हें सहसा बिच्छू ने डंक मार दिया तो—तुरंत वे नीचे की ओर चल पड़े... श्रीपति की समझ में नहीं आया कि कुछ ही देर पहले उसके साथ प्रसन्नता-पूर्वक बातचीत करनेवाले उसके खुशमिजाज मालिक को एकाएक हो क्या गया है ? उनका वह बर्ताव उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे किसी देवता ने दानव का रूप धारण कर लिया हो। दौलू का हाथ पकड़े वह चुपचाप उनके पीछे पीछे जाने लगा।

दादासाहब सीढ़ियाँ उतर ही रहे थे कि इतने में हाथ में आरती का थाल लिए उनकी श्रीमती जी आ पहुँची। सीढ़ियों के बीचों बीच पति-पत्नी का साक्षात् हुआ। पत्नी की मुद्रा से उल्लास टपक रहा था। हँसकर वे कहने लगीं—‘ मंत्रीपद प्राप्त करना यह कोई मामूली बात नहीं है। इस तरह...यहाँ रास्ते पर थोड़े ही मैं आरती उताहूँगी ? चलिए ऊपर बैठक के कमरे में—और देखा नहीं आपने ? आपकी तीनों बिटियारानी आपसे रुठकर बैठी हैं। आज का दिन परम सौभाग्य का दिन है। लड़कियों का प्यार दुलार करना तो कहीं रहा और... ’

मुँह से बिना एक शब्द भी निकाले दादासाहब सीढ़ियाँ उतरने लगे।

‘ इस समय मैं आपको कहीं भी न जाने दूँगी... ’ उन्हें रोककर मधुर, प्यार भरे स्वर में उनकी स्त्री ने कहा। सहसा झल्लाकर दादासाहब ने कहा—‘ —तो क्या किसी के गले में फाँसी लगती हो तब भी...उसे बचाने के लिए भी तुम मुझे जाने न दोगी ? हाँ ! तुम हो भी तो ऐसी ही। तुम्हें आरती उतारने की लालसा है; पर तुम यह नहीं जानती कि आरती की ज्योति से किस प्रकार

रक्षा की जाय ! और इस बात को जानते हुए भी मैंने उचित प्रबंध कभी नहीं किया ।... अपनी जिम्मेदारी की ओर से मैंने आँखें बंद कर ली थीं । लेकिन तुम तो माँ थी । तुम्हें तो इस तरह बेखबर नहीं रहना चाहिए था । लेकिन अब तुमसे यह सब कहकर भी क्या फायदा ? तुम्हारे आँचल में आग लगी है... मेरे तमाम कपड़ों में आग लगी है... आरती ने हमारे घरबार में आग लगा दी है.....’

‘ क्या हो गया है आपको ? ऐसी शुभ घड़ी पर मुँह से ऐसी अमंगल बातें नहीं निकाला करते । हम दोनों के जीवन में आज का दिन कितना मंगल दिन है—’

‘ मंगल ! ’ यही—एक ही शब्द दादासाहब के मुँह से निकला । लेकिन उनका वह कंठ—स्वर उनकी स्त्री को किसी घायल जानवर के चीत्कार के जैसा प्रतीत हुआ । नौकर लोगों के सामने ज़्यादा तमाशा दिखाना ठीक नहीं यह सोचकर वे चुपचाप आरती उतारने के लिए तैयार हो गईं । लेकिन दादासाहब ने जोर से ठेलकर आरती का थाल नीचे गिरा दिया । झनझनते हुए वह थाल एक ओर जा गिरा । धम्म धम्म पैर पटकते हुए सीढ़ियाँ उतर कर दादासाहब नीचे आ पहुँचे । उनकी स्त्री सीढ़ी पर ही बैठकर सिसकने लगी । इस दृश्य को देखकर नीचे की ओर खड़ी पमा, बिमा, कमा एक साथ चीख पड़ी—सब नौकरलोक आतंकित होकर यंत्रचालित के जैसे वहाँ के वहाँ ठिठककर खड़े रह गए । लेकिन उनमें से किसी की भी ओर दादासाहब का ध्यान नहीं था । बंगले के फाटक से होकर वे तेज़ी बाहर निकले और गाड़ी में जा बैठे । इस दृश्य को देख दौलती तो मारे डर के काँपने लगा । उसे खींचते हुए अपने साथ लेकर श्रीपति दादासाहब के पीछे पीछे गया और गाड़ी में अपने स्थान पर जा बैठा ।...

सहमकर उसने पूछा—‘ कहाँ पर ले चलूँ ? मंदिर ? ’

‘ नहीं ! पुलिस स्टेशन ! ’

श्रीपति संज्ञाहीन सा दादासाहब का मुँह ताकता ही रह गया । दोनों हाथों में माथा पकड़कर दादासाहब ने कहा—‘ किस मुँह से बताऊँ श्रीपति ! कुछ ही समय पहले का किस्सा है—किसी आवारा स्त्री के पीछे भैय्या होटल में मारपीट कर बैठा । एक आदमी बुरी तरह घायल हो चुका है । पुलिस ने भैय्या को गिरफ्तार कर हवालात में रख दिया है । कहते हैं कि वह नशे में चूर था । चलो श्रीपति ? जल्द चलो ! ’...

गाड़ी स्टार्ट करने की श्रीपति ने कोशिश की लेकिन उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि जैसे उसके पैर-हाथ ऐंठ गए हों। उससे चिपककर बैठे हुए दौलू की ओर उसने देखा। उसे दिखाई देने लगा कि जैसे दौलती जवान हो गया है और वह कैदी की पोशाक में उसे दिखाई दे रहा है। श्रीपति को जान पड़ने लगा कि जैसे उसका दिल बैठा जा रहा है! ... भाराक्रान्त शरीर से और उससे भी अधिक बोझिल मन से उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी। आज संध्या-समय ही जिस गाड़ी को उसने सोने की गाड़ी कहा था वही अब उसे—

उसने सोचा—यह मोटर नहीं है। यह तो एक भद्दा सा ठेला है और उसमें बिठलाकर दादासाहब को फाँसी के तख्ते पर लटकाने के लिए, उन्हें वह अपने साथ फाँसी घर ले चला है!!



दो प्रेतात्माएँ

वह अकाल का वर्ष था ।

समस्त नगर-निवासी मंदिर में इकट्ठा हुए थे । बाल-वृद्ध, निर्धन-धनवान, स्त्री-पुरुष सब कोई हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करने लगे—‘ हे कृपानिधान ! तुम्हारी असीम कृणा के मेघों की हम पर वर्षा होने दो । हम दीनों पर दया करो दीनदयालु ! हे भक्त-वत्सल ! हम सब तुम्हारी ही तो संतान हैं ।.....’

उनकी यह प्रार्थना समाप्त भी न हो पाई थी कि तभी उस भीड़ को चीरते हुए एक नास्तिक व्यक्ति आँधी के जैसा वहाँ आ पहुँचा । सागर के से गंभीर स्वर में वह गरज पड़ा—‘ बेवकूफ़ों,—पत्थर की इस प्रतिमा के सामने बेकार ही रोने गिड़गिड़ाने से तुम्हें क्या लाभ होगा ! बाहर जाकर देखो । मंदिर के सामने छोटे छोटे पत्थरों का एक ढेर पड़ा तुम्हें दिखाई देगा । तुम्हारे यह देवता उन्हीं पत्थरों के सहोदर, ज्येष्ठ बंधु हैं । पत्थर को फूलों से विभूषित करने पर वह देवता के जैसा ज़रूर दिखाई देता है लेकिन इसका आशय यह नहीं कि उस में देवत्व भी आ जाता है । यदि तुम यह नहीं चाहते कि तुम्हारे बाल-बच्चे भूख से बिलख बिलख कर मर जायँ तो मेरा कहना मान लो । इस सुसज्जित पत्थर की प्रार्थना करने की मुखता को त्याग दो और तुम सब मेरा अनुसरण करो । मैं तुम्हें नदी दिखलाऊँगा । अगर तुम सब मिलकर दिन रात परिश्रम करो तो उस नदी का जल तुम्हारे खेतों तक अवश्य आ पहुँचेगा । भगवान तो हमारे बाटु—बल में है, न कि तुम्हारे सन्मुख खड़ी इस मूर्ति में । ’

सहसा जाने कहाँ से एक नुकीला पत्थर हवा में घूमता हुआ वहाँ पर आ गिरा और उस उपदेशक के माथे पर इस तरह लगा कि मानो पेड़ के पके फल पर किसी पक्षी ने खट से चोंच मारी हो । रक्त-रंजित मुद्रा से जनसमूह की ओर

देखते हुए, जोशीले स्वर में नास्तिक बोल उठा—‘भाइओ ! अब भी समय नहीं गया है । मेरा कहना मान लो—आँखें खोलो—प्रार्थना बंद कर दो । पत्थर कभी नहीं पसीज सकता—हरगीज नहीं । यह साक्षात् मूर्खता है ।’

लेकिन तुरन्त, इससे पहले कि वह और कुछ कह सके, चारों ओर से उस पर पत्थरों की इस तरह बाछार होने लगी कि मानो सैकड़ों गुलेलों में से एक साथ मिट्टी की गोलियाँ चल रही हों । उस उन्मत्त जन-समूह ने इस तरह कुचल कुचल कर उसकी निर्मम हत्या कर डाली कि जैसे वह कोई विषैला साँप ही था ।

नक्षत्र के पश्चात् नक्षत्र व्यतीत होने लगे परन्तु नभ से वर्षा की एक बूँद तक न गिरी । दिन-दुखियों के घर चूल्हा रूठ गया । बालकों के करुण मुख की ओर दृष्टिपात करने का माता पिता में साहस न रहा । घर, बाजार, चारों ओर दिन-दहाड़े मृत्यु की भीषण कृष्ण-छाया, विकट हास्य करते हुए नगर की जनता का पीछे करने लगी ।

दुबारा समस्त नरनारी मंदिर में एकत्रित हो गए । बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, निर्धन-धनवान सब कोई एक साथ हाथ जोड़कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगे—‘हे प्रभो ! हम दीनों पर दया करो । तुम्हारी असीम कृपा के मेघ हम पर बरसने दो । हे भक्तवत्सल ! हम सब तुम्हारी ही तो संतान हैं... ।’

उनकी यह प्रार्थना समाप्त भी न हो पाई थी कि इतने में एक आस्तिक व्यक्ति उनके सन्मुख आ खड़ा हुआ । शरदऋतु की सरिता के प्रवाह जैसा प्रसन्न उसका स्वर था । उसने कहा — ‘भाइयो, सिर्फ हाथ जोड़कर यहाँ पर खड़े होने से—केवल भगवान की प्रार्थना करने भर से कोई फायदा न होगा । क्या तुम इस बात को स्वीकार करते हो कि हम सब एक ही परमात्मा की संतान हैं—हम सब एक ही माँ के पुत्र हैं—हम सब एक ही परिवार के व्यक्ति हैं ?’—

सभी ने हाँ में सिर हिलाया ।

आस्तिक कहने लगा—‘तो चलिए मेरे साथ । नगर के विभिन्न स्थानों में छिपाए हुए सब अनाज को हम इकट्ठा करेंगे । सुरंग में रखा हुआ, घासफूस के ढेर में छिपाया हुआ, तहखानों में गाड़कर रखा हुआ.....एक एक दाने को हम खोज कर निकालेंगे । उसे इकट्ठा करेंगे और हर एक व्यक्ति को उतना ही अनाज देंगे जितना कि मनुष्य की उदर-पूर्ति के लिए आवश्यक होता है । ऐसा करने से इस नगर का एक श्वान तक, बिना अन्नजल के कालकवलित न हो पाएगा । अन्यथा

इस मंदिर के बाहर लगे हुए पत्थरों के ढेर के समान कुछ ही दिनों में इस गाँव में भूखमरों की लाशों के ढेर दिखाई देने लगेंगे — चलो भाईयो — देरी न करो। भगवान तो हमारे हृदय में बसते हैं, न कि तुम्हारे सन्मुख खड़ी इस मूर्ति में...

घोर गर्जन के साथ किसी विशाल वृक्ष के ऊपर टूट पड़नेवाली विद्युलता की भाँति कहीं से एक तुकड़ीला पत्थर चकराता हुआ वहाँ पर आया और खट से उपदेशक के माथे पर लगा। रक्त से भीगे हुए अपने हाथों को ऊपर उठाकर उस उत्तेजित जनसमूह को शांत करने की चेष्टा करते हुए, आवेशयुक्त शब्दों में वह कहने लगा — ‘मूढ़ो ! इस बात को न भूलना कि वह परमात्मा परमदयालु है। तुम सब एक ही परमात्मा की संतान हो। तुम में से हर एक के पास जितना भी अनाज है, उसके स्वामी तुम अकेले ही नहीं हो। उस में तो सब का हिस्सा.....’

इसके बाद उसके मुख से कोई शब्द निकल न पाया। उस पर चारों ओर से पत्थरों की इस तरह भीषण वर्षा होने लगी कि मानो सैकड़ों बन्दूकों में से एक साथ गोलियाँ चल रही हों। उस उन्मत्त जनसमूह ने उस अभागे को बावले कुत्ते के समान रौंदकर, कुचल कर मार डाला।

उस वर्ष के भीषण अकाल में उस नगर के समस्त दीन दुखी लोग छटपटाकर मर गए। शेष लोगों में कुछ धनवान व्यक्ति थे उन्होंने भी भयाकुल होकर उस नगर का त्याग कर दिया।

अब उस निर्जन नगर में, खंडहर के रूप में एक वही मंदिर शेष है। उस मंदिर के अहाते में, कभी कभी मध्य-रात्रि के समय, हाथ में हाथ मिलाकर, खिलखिलाकर, हास्यध्वनि करते हुए और शोरगुल मचाते हुए दो प्रेतात्माएँ दिखाई देती हैं। किसी समय वे दोनों मिलकर खंडहर जैसे उस मंदिर के अहाते के निकट जाकर उस मूर्ति से पूछने लगती हैं — ‘हे भगवान, यह नगर एकाएक इस प्रकार जन-शून्य, वीरान, उजाड़ कैसे हो गया ? तुम्हारी प्रार्थना करने-वाले तुम्हारे वे सब उपासक कहाँ पर हैं ?’

कान लगाकर वे दोनों प्रेतात्माएँ भगवान के मुख से उत्तर की प्रतीक्षा करती हैं; परंतु उत्तर के बजाय, निद्राभंग हो जाने के कारण निकट के वृक्ष से होने वाली पंछियों के परों की फड़फड़ाहट ही केवल उन्हें सुनाई देती है !



संध्यादीप

डेक्कन जिमखाने पर किसी बंगले के सामने आकर हमारी टैक्सी खड़ी हो गई। आँखें खोलकर मैंने देखा। टैक्सीवाला कह रहा था—‘हज़ूर, यही है वह बंगला। दरवाज़े पर लगे बोर्ड पर लिखा नाम, ‘दिनकर थोरात, एम्. एस्. सी.’ मैंने पढ़ा.....

उस क्षण मेरे हृदय की जो दशा हो गई उसका बारीकी से वर्णन करना इन्स्योरन्स कंपनी में रुपथे, आने, पाई का हिसाब करने वाले मुझ जैसे व्यक्ति के लिए असंभव है। कालिज में पढ़ते समय हर एक व्यक्ति कुछ न कुछ अंशों में कवि होता ही है। इस नियम में हम दोनों अपवाद रूप नहीं थे। तब भी, बी. ए. पास करने के पश्चात्, उदरपूर्ति के लिए दौड़धूप में मैं लाहौर की एक इन्स्योरन्स कंपनी में जा पहुँचा और एम्. एस्. सी. पास करने पर दिनकर राजनीतिक आंदोलन की बाढ़ में कूद पड़ा। इस तरह हम दोनों की काव्य की मोटर गाड़ी का पेट्रोल एक साथ ही खत्म हो गया। फिर भी, यदि कालिज के दिनों की मेरी प्रतिभा की एक झलक आप देखना चाहें तो उन भावों का कवित्वमय वर्णन सुन लीजिए जो दिनकर के नाम का बोर्ड देखते ही मेरे मन में उदित हुए। चंद्रग्रहण के पर्व पर, आनंदपूर्वक समुद्र में तैरने वाले किसी व्यक्ति को सहसा सागर की लहरें अचानक तेज़ी से भीतर खींच ले जाय...यह देख उसे प्रत्यक्ष अनुभव होने लगे कि ये लहरें दरिया की लहरें नहीं वरन् कराल काल के क्रूर पाश ही हैं। जीवन से निराश होकर वह पानी में दो एक बार डुबकियाँ खाने लगे और बाद में उसे पूर्ण विश्वास हो जाय कि अब तो उसके भाग्य में इस अथाह सागर के उदर में अविलंब समा जाना ही लिखा है—और तभी दृष्टात् किसी मच्छीमार की नाव का सहारा पाकर वह बाहर निकल आये.....

हाँ। आखिर मैं श्रीमती जी के सहित अपने बचपन के साथी के घर आ पहुँचा था।

लाहौर से पूना तक हम लोग सकुशल आ पहुँचे थे—छुरी, चाकू से, बंदूक की गोलियों से बचकर,.....इज्जत के साथ, सही सलामत.....

मोटर में, देह की गठरी सी बनाए बैठी श्रीमतीजी को उँगली के इशारे से मैंने सूचित किया कि यही वह बंगला है। ज़रा सा जल सौंचने के बाद धूप में कुम्हलाए फूल जिस तरह प्रफुल्लित हो उठते हैं, उसी तरह श्रीमती जी के मुख—कमल पर प्रसन्नता की एक लहर सी दौड़ गई। लाहौर से पूना तक यंत्रचालित की तरह वह मेरे साथ मुसाफ़री कर रही थीं। उस दौड़ धूप में, दिङ्गली मज़ाक करने जैसी मेरी हालत नहीं थी, वर्ना उनकी उन निष्प्राण सी हरकतों की ओर देखकर मैं ज़रूर कहता कि पत्नी तो वह पेटी है जिस पर लेबल चिपका रहता है — ‘ काँच की चीज़ें हैं। होशियारी से उठाना ’। चूँकि पत्नी भी वैसी ही एक चीज़ है जिसे जीवन के सफ़र में हर घड़ी काँच की चीज़ों जैसा ही बहुत सँभाल कर होशियारी के साथ ले जाना पड़ता है।

लेकिन अब मेरे संकेत करते ही अचानक उस कठपुतली का झाँसी की रानी में परिवर्तन हो गया। उसने खटू से मोटर का दरवाज़ा खोला। बंगले के फाटक की पीछे की ओर ठेल दिया और दरवाज़े पर लगी कॉलबेल पर मैं उँगली भी न रख पाया था कि तभी मुस्कराते हुए वह मेरी बगल में आकर शान से खड़ी हो गई। मानो हम दोनों सैर ही के लिए कहीं निकले थे।

बेल दवाते ही, भीतर से कहीं पर घंटी बजने की आवाज़ और उस आवाज़ के पीछे ही, पिछवाड़े की ओर से—‘ पांझू, ओ पांझू ’ ऐसी किसी नारी कंठ से निकली आवाज़ सुनाई दी। मैं भौंप गया कि यह आवाज़ ज़रूर अरुणा भाभी ही की है। तुरंत ऊपर वाली मंज़िल के पिछवाड़े की सीढ़ियों से किसी के पैरों की खड़ाऊँ की खटूखटू भी सुनाई देने लगी।

यह कहना बड़ा ही मुश्किल है कि मनुष्य के मन में किसी विचार का उद्भव कब और कैसे होता है! बचपन की बात है। हमारे मकान के बगल में एक राम जी का मंदिर था। उसमें एक संन्यासी रहा करता था। वह संन्यासी पैरों में आठों पहर खड़ाऊँ पहने रहता था। जब भी कभी मैं खड़ाऊँ की आवाज़ सुन पाता हूँ तो मेरी आँखों के सम्मुख सहसा किसी संन्यासी की मूर्ति आकर

खड़ी हो जाती है। आज भी वही हुआ। खड़ाऊँ की उस आवाज को सुनकर पल भर मैंने सोचा, सन बयालिस में जिस तरह दिनकर एकाएक देशभक्त बन गया था, क्या उसी तरह, किसी दिन उसने अचानक संन्यास तो नहीं ग्रहण कर लिया ? लेकिन तुरन्त अपनी इस विचित्र कल्पना पर मुझे हँसी आ गई। दिनकर जैसा युवक, जिसने एम. एस. सी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, और जो सन बयालिस की क्रांतिकारी प्रवृत्तियों में फँसकर किसी बम केस का अभियुक्त भी बना वह संन्यासी क्योंकर बनेगा ? तुरन्त मैंने अपने आपसे कहा— धत् तेरे की। इससे भी अधिक महत्त्व की एक घटना का तो मुझे विस्मरण ही हो गया !

सन बयालिस की दहकती आग में जिस वक्त दिनकर कूद पड़, उस वक्त उसे एक लड़की से प्रेम हो गया था। उसकी गिरफ्तारी के कारण उस वक्त उनका ब्याह संपन्न न हो सका। इसके बाद हम सब ने इस बात का जैसे दृढ़ विश्वास कर लिया था कि दिनकर को जरूर फाँसी होगी। उस लड़की के माता पिता ने लाख कोशिशें कीं, अन्य कई सुयोग्य वरों के प्रस्ताव रखे लेकिन वह एक थी कि अपनी ही जिद पर अटल रही। स्वाभिमान भरे शब्दों में उसने कहा — ‘ यदि दिनकर बाबू फाँसी पर चढ़ गए तो अपने आप को उनकी विधवा कहलाकर अपना शेष जीवन मैं देशसेवा में अर्पित कर दूँगी ’—इस तरह जबाब देकर उसने सब के मुँह बंद कर दिए थे। भाग्यवश बम-केस का वह मुक्तदमा दीर्घकाल तक चलता रहा और उसका फैसला होने के पहले ही दिनकर को जेलखाने से रिहा कर दिया गया। पिछले साल उसी लड़की के साथ उसका ब्याह हो गया। उस वक्त बड़े ही अनुरोध के साथ उसने हमें निमंत्रित किया था। उसने जो पत्र हमें लिखा था वह बड़ा ही मजेदार था —

उसने लिखा था — ‘ बचपन में हम दोनों ने चोरी चोरी कच्ची इमलियाँ खाई थीं। हाईस्कूल में पढ़ते समय हम दोनों ने, घर के लोगों की नज़र बचाकर नाटक देखे थे और जब हम कालिज में पढ़ते थे उस समय, किसी कालिज-कुमारी के कशकलाप से गिरे हुए हेअर पिन पर दोनों ने साथ साथ कविताएँ भी लिखी थीं। इस पूर्वपरंपरा के अनुसार तुम्हारा आर मेरा ब्याह एक ही मुहूर्त पर होना उचित था। लेकिन तुम्हें इतना सब्र कहाँ ? तुम तो अकेले ही ‘ चतुर्भुज ’ हो गए। खैर ! अब मेरे ब्याह में तुम दोनों को (दोनों की जगह यदि तीनों के आने की

संभावना हो तब तो क्या कहने !) आना ही होगा, वरना हमारा ब्याह रजिस्टर्ड हो जाने पर भी ग़ैर क़ानूनी समझा जायगा । समझे प्यारे !.....’

दिनकर के ब्याह में जाने की हम दोनों की हार्दिक इच्छा थी । लेकिन ‘करम गति टारै नहीं टारै !’ श्रीमती जी को एकाएक टाइफ़ाइड ने आ घेरा.....

कुछ समय पहले पिछवाड़े की सीढ़ियों की ओर से सुनाई देनेवाली खड़ाऊँ की आवाज़ अब सामने के दरवाज़े के निकट अधिक स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी और यह देखने के लिए मैं बेचैन हो उठा कि आखिर यह संन्यासी जी हैं कौन ?

तभी खट् से दरवाज़ा खुला । मेरे सामने दिनकर ही खड़ा था । बिना किसी पूर्व-सूचना के, हम लोगों के अचानक आगमन पर वह विस्मित हो उठा था । उसकी दशा ठीक वैसी ही हो गई थी जिस तरह सूर्य की किरणें शीशे से होकर आँखों पर आ गिरने से नन्हे बालक की हो जाती है । पलभर तो वह अवाक़ रहा और बाद में सहसा उसके मुँह से उद्गार निकल पड़ा.....

‘ओह ! वसंत..... तुम ?’

‘.....जी । मैं ।’

‘कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ?’

‘हो सकता है । तुम दाक्षिण के निवासी शायद अब तक स्वप्न ही में हो दिन्नू । लेकिन हम उत्तर-भारत के रहने वाले तो एक खौफ़नाक स्वप्न देखकर अभी अभी जाग उठे हैं ।’

मेरे मुँह से इस विचित्र उत्तर को सुनकर वह मेरी ओर एक टक देखता झी रह गया । लाहौर में सांप्रदायिक झगड़ा शुरू हुआ तब से लेकर अब तक देखी हुई अमानुषिक घटनाओं के कारण मेरा दम घुटने लगा था । अपनी उस व्यथा को मैं अब तक श्रीमती जी से भी नहीं सुना सका था, इस डर से, कि उसे सुनकर कहीं वे अधिक ही भयाकुल न हो जाय । लेकिन अब वही व्यथा उमड़ कर बाहर प्रकट होने की चेष्टा करने लगी । दिनकर के साथ जी खोल कर बातें करते हुए मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि जब पका घाव निचोड़ दिया जाता है तो दर्द बहुत कुछ हल्का हो जाता है । मैंने कहा — ‘दिन्नू, आज संध्या-समय गांधीजी के समान इस बंगले में तुम भी सामुदायिक प्रार्थना करो । तुम्हारा मित्र अग्नि में नहीं झोंका गया बंदूकों की गोलियों का निशाना नहीं बना, सांप्रदायिक दंगे में मारा नहीं गया, इस लिए तुम भगवान से प्रार्थना करो । वैसे बताऊँ

तुम्हें दिनकर ! गांधीजी का अहिंसा का सिद्धांत मानकर हम लोगों ने धोखा खाया.....’

दिनकर मुस्कराया । उसने कहा—‘ मेरे भाई, अहिंसा पर हम लोगों की श्रद्धा और गांधीजी की श्रद्धा इन दोनों में जमीन आसमान का अंतर है । गांधीजी की श्रद्धा का जन्म उनके आत्मिक बल में है—अपने सिद्धांतों की खातिर प्राणों तक का बलिदान देने की तैयारी में है, जब कि हमारी श्रद्धा का जन्म हमारी दुर्बलता में—हमारी कायरता में हुआ है । विद्रोही बनकर ब्रिटिश शासन को मिटा देने का बल हम में नहीं था । इसी लिए हमने आँखें मूँदकर गांधीजी की अहिंसा का अंगीकार किया । बिना किसी कष्ट संकट के ही हमें क्रांति चाहिए थी’

दिनकर के पीछे पीछे उसकी पत्नी भी वहाँ प्रविष्ट हो गई थीं । इतनी देर तक वे चुपचाप हमारा वार्तालाप सुन रही थीं लेकिन अब उनसे रहा न गया । मुस्कराकर उन्होंने कहा—‘ भाई साहब, सुना है कि गांधीवादी चाय नहीं पीते, लेकिन आप की बातों से जाहिर होता है कि अब गांधीजी पर आपकी श्रद्धा नहीं रही—तब चलिए भीतर । चाय ठंडी हो रही है...’ तुरन्त दरवाजे पर खड़ी टैक्सी को ओर ध्यान जाते ही उन्होंने कहा—‘ राम राम । सामान असवाब सब कुछ अभी तक गाड़ी ही में पड़ा है । जरा ठहरिए । सामान भीतर लाने के लिए मैं नौकर से कह आती हूँ । ...’ दिनकर की ओर देखकर भाभी ने कहा—‘ आप भी कैले अजीब आदमी हैं ! टैक्सी दरवाजे पर जाने कब से लदी खड़ी है और यहाँ गप्पें लड़ाते बैठे हैं । आप मर्दों की बात ही अजीब होती है । अब देखिए, इतनी देर तक ठहरना पड़ा इस लिए वह टैक्सीवाला कितने रुपये माँगता है । बैरिस्टरों की भी फीस उतनी नहीं होती है जितनी कि इन...’

‘ पांड़...ओ पांड़ ’ नौकर को आवाज देती अरुणा भाभी भीतर जाने लगीं ...तभी उन्हें सुनाकर दिनकर ने कहा,—‘ देख लिया न तुमने वसन्त ? स्त्री चाहें कम्युनिस्ट हो जाय या और कुछ हो जाय पर अंत में स्त्री तो स्त्री ही रहेगी ! उफनते हुए दूध को चूँहे से नीचे उतारने के लिए पुरुष सनसी, कपड़ा आदि की खोज में यहाँ वहाँ दौड़ेगा, लेकिन स्त्री ? यह देखकर भी कि चूँहे से दूध का हाथों से उतारना असंभव है—वह चुप न रहेगी । उतने दूध की बरबादी होते उससे देखा न जायेगा । वह तो उसे अपने मुँह से चाट लेने में भी न हिचकिचायेगी, चाहे

बाद में मुँह जल जाने के कारण एक महीना अस्पताल में क्यों न रहना पड़े...

शायद दिनकर के इस व्यंग का कुछ ही अंश भाभी ने सुना था—बर्ना...

मैंने सोचा, आजकल का यह जमाना भी कैसा अजीब है ! पंजाब के झगड़ों से भयाकुल हो मैं पूना चला आया लेकिन यहाँ भी देखता हूँ तो—प्रेम विवाह के कारण जिनके जीवन—पूत्र एक दूसरे से बँध गए हैं उस मेरे पढ़े लिखे मित्र के यहाँ भी—लड़ाई झगड़ा जारी ही है ।

दोपहर में भोजन के बाद मैं सो गया ...

शाम के समय उन पति पत्नी में किसी समस्या पर चलनेवाली बहस की भनक कानों में पड़ते ही सहसा मेरी आँखें खुलीं । उस पार के कमरे में दोनों में गर्मागर्म बहस जारी थी । शायद किसी फिल्म को लेकर ...

सुस्ती की वजह से करवट बदल कर मैंने दुबारा आँखें मूँद लीं । लेकिन उन बंद आँखों के सामने वे सब भयानक दृश्य—जिन्हें मैंने लाहौर में देखा था—तेज़ी के साथ दिखाई देने लगे । ... किसी रास्ते के किनारे गिरा, खून से लथपथ आठ वर्षीय वह बालक । वह ' पानी पानी ' की रट लगाए था लेकिन मुझमें इतना साहस नहीं था कि कुछ समय के लिए रुककर उसके मुँह में दो बूँद पानी डाल देता । दावानल में जलकर भस्म होनेवाले पंछियों के घोंसलों की भाँति वहाँ के मकान—आग की भयानक लपटों—इन सब दृश्यों को देखकर मेरा दिल कहता था कि ये मकान नहीं जल रहे हैं—यह तो मनुष्यता की चिता धू धू करके जल उठी है !!

किसी मकान की धड़ाम् से ढहती हुई दीवारों को देखकर मेरे दिल में विचार उठा कि इन दीवारों ने आज तक न जाने कितने प्रेमालाप सुने होंगे । कई वात्सल्य-पूर्ण लोरियाँ एवं मधुर गीत आज तक इनके कानों में गूँज उठे होंगे—अपनी संतान के लिए भूखे पेट रह जाने वाली माता, रूग्ण पत्नी के इलाज में सब रुपये बरबाद कर कष्ट, श्रम, भूख, प्यास की परवाह न करने वाला पति—इस तरह के अन-गिनत दृश्य इन्होंने देखे होंगे । और आज दुर्भाग्य से उन्हीं दीवारों को यह कैसे भयानक दृश्य देखने पड़ रहे हैं ।

कंपनी के कारोबार का जैसे तैसे प्रबंध कर, लाहौर से भाग निकलने की कोशिश में एक बार तो गुंडों से मेरी हाथापाई भी हो गई थी । एक बार मेरे दिल में विचार उठा था कि इस प्रशुब्ध जन—समूह को शांत करने के लिए ' महात्मा

गांधी की जय' का नारा लगा दूँ; फिर भी मेरे मुँह से उन शब्दों का उच्चारण न हो पाया। गांधीजी के तत्त्वज्ञान की सोलहों आने हार मैं अपनी आँखों से देख रहा था। उनके द्वारा निर्मित आहिंसा के तत्त्व को अंधश्रद्धा के साथ अपनाने के कारण...

उस तरफ के कमरे में दिनकर और अरुणा भाभी में चलने वाली बहस जोर पकड़ रही थी। दिनकर कह रह था... 'तब तुम्हीं क्यों नहीं चली जाती उनके साथ? सिनेमा यानी कोई धर्मकार्य तो है नहीं कि जिसमें पति और पत्नी को गाँठ से गाँठ बाँधकर बैठना पड़े।'

इस पर रुष्ट स्वर में भाभी कह रही थी— 'मैं जानती हूँ, आप सिनेमा चलने में क्यों टालमटोल कर रहे हैं। जब तक तुलसी के सामने अपने हाथों दिया नहीं जलाने पाओगे... इसी लिए तो... सचमुच, मैं बड़ी हैरान हूँ... आप इतने पढ़े लिखे, महान् क्रांतिकारी... विद्रोही... फाँसी की सजा होने वाली थी तब भी माफ़ी माँगना आपने अस्वीकार किया... और... इतना सब होते हुए भी किसी भोलीभाली गँवार स्त्री के समान तुलसी के सामने आप नियम-पूर्वक अपने हाथों दिया जलाते हैं...'

भाभी का खिलखिलाकर हँसना मुझे सुनाई दिया। गुलाब के खूबसूरत, खुशबू-दार फूल की ओट में छिपे काँटों की तरह उस कुटिल हास्य में भर्त्सना की सूक्ष्म, चुभीली ध्वनि अंतर्हित थी। मुझे डर मालूम होने लगा कि हम दोनों को सिनेमा दिखलाने की समस्या पर पति पत्नी कहीं आपस में लड़ाभिड़ न बैठें। इस कलह का निवारण करने की एक छोटी सी तरकीब मेरे पास थी। अंगड़ाई लेते हुए उस कमरे के दरवाजे में जाकर मैं खड़ा हो गया और कहा— 'सुनो दिनु, इस मुसाफ़री में मुझे इस कदर तकलीफ हुई है कि, मेरी तो नस नस में पीड़ा हो रही है। टहलने या और कहीं भी जाने की आज मेरी तबीयत ही नहीं है। भाभी के हाथ की बनी बढ़िया सी चाय पिला दो बस। चाय पीकर हम सब यहीं बैठकर जी भरकर गप्पें लड़ाएंगे।'

दिनकर ने अर्थवाही दृष्टि से अरुणा भाभी की ओर देखा। मानो वह कहना चाहता था कि— देखो, अंत में विजय उसी की होती है जो गम खाना जानता है। कुछ देर पश्चात् चाय पीकर हम उठ ही रहे थे तभी मैंने बाहर की ओर देखा। संध्यासमय की धूमिल छाया सब दिशाओं को आवृत करती सृष्टि पर अवतीर्ण

हो रही थी। खिड़की से झाँककर मैंने बाहर की ओर का दृश्य देखा। समस्त चराचर सृष्टि तेज़ी के साथ श्रीहीन होते दिखाई दे रही थी। कुछ ही समय पहले बाहर जगमगाने वाली सुनहली धूप—वह अब मिट्टी में मिल गई थी। आहिस्ता आहिस्ता अवनितल पर उतरने वाली कृष्ण—रजनी ठीक ऐसी मालूम पड़ रही थी कि जैसे धरती पर दिखाई देने वाले मुर्गी के बच्चे पर झपट पड़ने के लिए अपने पंख फैलाकर कोई चील ही आसमान में मँडरा रही हो।

किसी अनिर्वचनीय उदासीनता से मेरा हृदय व्याप्त हो गया। लाहौर में प्राणों को खतरे में देख उदासीनता की जिस छाया ने मेरे मन को आ घेरा था, पत्नी के टॉईफ़ाईड से बीमार पड़ने पर और इस दुश्चिन्ता के कारण की इस बीमारी से उसका बचना असंभव है, जिस भयानक छाया ने मेरे मन को आवृत कर लिया था, न जाने क्यों, वही उदासीनता मुझे बारबार याद हो आने लगी। मेरे दिल में विचार उठा कि रात्रि की इस अंधकारमयी भीषण छाया को सृष्टि पर पहले पहले अवतीर्ण होते देख, आदि—मानव के मन में क्या क्या भाव जागे होंगे? अपने विस्मित—भ्रांत चित्त को उसने कैसे सांत्वना दी होगी? नित्य प्रकाश में रहने के कारण स्थिरचर के प्रति उसके अंतःकरण में जरूर श्रद्धा निर्माण हुई होगी। और जिस वक्त उसने अँधेरे का वह भयानक रूप देखा होगा तब अपनी डगमगाने वाली श्रद्धा को किस के सहारे उसने.....

एकाएक मेरी तंद्रा टूटी। दिनकर कह रहा था —‘ वसंत, तुम यहीं बैठो। मैं जरा तुलसी पर दीया रख आऊँ,.....बाद में हम सब छत पर बैठ आराम से गर्पें लड़ाएंगे। ’

मैं असमंजस में पड़ गया। मेरी समझ में न आया कि दिनकर ही के हाथों तुलसी के क्यारे पर दीया जलाने का क्या रहस्य है। हो सकता है कि हमारी प्राचीन संस्कृति की यह एक अच्छी सी प्रथा होने के कारण, दिनकर के यहाँ परम्परागत इसका पालन किया जाता हो ! लेकिन तुलसी पर दीया रखने के लिए स्वयं दिनकर ही के जाने की क्या जरूरत है ? ईश्वर, धर्म आदि बातों पर अरुणा भाभी विश्वास न भी करती हों, तब भी किसी सेवक के हाथों यह काम कराया जा सकता है।

दीया लाने के लिए दिनकर भीतर गया।

तुरन्त मुझे एक तरकीब सूझी। जैसे ही दिनकर भीतर से बाहर आया, मैंने

कहा— ‘ दिनकर, तुलसी के चबूतरे के पास कुर्سيयाँ डालकर हम सभी वहीं चलकर बैठेंगे। याद है तुम्हें बचपन में तुम्हारी माँ वहाँ बैठकर हम सब को राम और कृष्ण की मजेदार कहानियाँ सुनाया करती थीं। शबरी भीलनी की कहानी तो वे इतने रोचक ढंग से सुनाती थीं कि..... ’

तुलसी के चबूतरे के पास अब भी धुँधली सी रोशनी थी। मैंने देखा कि निकट ही लगी बिजली की बत्ती जलाने के लिए अरुणा भाभी जा रही हैं। लेकिन दिनकर ने उन्हें इशारे से मना कर दिया और तुलसी के सामने जलने-वाली दीप-ज्योति की ओर वह एकटक देखने लगा। वह दृश्य मुझे काव्यमय सा प्रतीत होने लगा। हो सकता है कि यह पूर्व संस्कारों का प्रभाव हो, लेकिन पवित्रता की वह प्रतिमा...सामने दिखाई देनेवाली तुलसी मैय्या, मंद वायु के झकोरों के साथ, खिलौने की चँवर की भाँति झूमनेवाली उसकी अनगिनत मंजरियाँ, आरती के क्षीण आलोक में नृत्य करनेवाली उन मंजरियों की परछाईयाँ—उस नन्ही सी दीपज्योति के कारण इर्दगिर्द के धूमिल आलोक में छा जानेवाली उज्ज्वलता की झलक—इन सब दृश्यों से प्रभावित होने के कारण कुछ क्षणों पहले मेरे दिल में जो अजीब सी बेचैनी पैदा हुई थी वह अब आहिस्ता आहिस्ता कम होने लगी। किसी के इस वचन को मैंने कहीं पर पढ़ा था कि ‘ भारतीय संस्कृति यह विनाश की ओर पहुँचानेवाली संस्कृति नहीं है, वह तो हमें विकास की ओर ले जानेवाली संस्कृति है। ’ उस वचन का यथार्थ ज्ञान मुझे इस क्षण हुआ। प्रसन्न मुद्रा से दिनकर की ओर देखते हुए मैंने कहा,—

‘ दिनू, एक बात पूछूँ तुमसे ? ’

‘ ठहरो ! तुम्हारे पूछने से पहले ही, तुलसी के सामने स्वयं मेरे हाथों आरती रखने की वह कथा—चाहो तो तुम इसे कहानी भी कह सकते हो—मैं ही तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। मुझ से सोचता था कि यह कहानी एक बार अरुणा को सुना दूँ। लेकिन सोचा, जाने हमारी कम्युनिस्ट श्रोता को वह कहानी जँचेगी या नहीं ? इसलिए—’

‘ क्या मतलब ? ’

‘ अरे भई ! यूँ तो सिद्धांतों की दृष्टि से मैं भी साम्यवादी ही हूँ। लेकिन मैं गांधीजी को मानता हूँ न ? इसी से अरुणा की यह धारणा हो गई है कि यह भी एक सनक है जो अक्सर गांधीवादियों के सर पर सवार हुआ करती है। मेरे जेल

चेल जाने पर इसने साम्यवादी पुस्तकें पढ़ना आरंभ कर दिया और आगे चलकर स्वयं कम्युनिस्ट बन गई। इस बात पर न तो मैंने उसे दोष दिया और न उसके विचारों की दिशा में परिवर्तन करने की कभी चेष्टा ही की। लेकिन आज सुबह जब तुम्हें गांधीजी की श्रद्धा का उपहास करते सुना, तब सोचा कि किसी समय तुम्हें भी वह समूची घटना सुना दूँ। वसंत, सच बताऊँ तुम्हें ? हमारे देश में सबसे ज़्यादा अभागा कोई व्यक्ति होगा, तो वह एक गांधीजी ही है। जनता की प्रवृत्ति करने की चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। बल्कि यों कहना चाहिए कि जनता ही ने उन्हें भुलावे में डाल दिया। हम लोग उनके प्रति सच्चे न रहे। तुम्हारे मेरे जैसे करोड़ों पढ़े लिखे लोगों ने गांधीजी को धोखा दिया है। ऐसे कई लोग हैं जिन्हें गांधीजी की अहिंसा पर श्रद्धा नहीं थी। उन्होंने बरसों गांधीजी को भुलावे में डाल कर उनकी अहिंसा पर श्रद्धा का ढोंग रचा। इसके अलावा और भी एक बात यह है कि जिस तरह इन लोगों की न तो गांधीजी की अहिंसा पर श्रद्धा थी उसी तरह हिंसा के भी मार्ग का वे विश्वास न करते थे। वे तो बस बड़ी बड़ी डींगें हाँककर, अपने आप को बचाकर, स्वार्थानता की प्राप्ति करना चाहते थे। मनुष्य किस विषय पर या किस व्यक्ति पर श्रद्धा रखे यह तो उसकी प्रवृत्ति और पसंदगी पर निर्भर है। लेकिन गांधीजी में वह बल है कि एक बार किसी को श्रद्धेय बना लिया कि समय पड़ने पर उसके लिए चाहे सर्वस्व का भी त्याग कर देना पड़े तो वे तनिक भी पीछे नहीं हटेंगे। इसी लिए—यह जानते हुए भी कि एक महान् घटना के कारण अपने देश को अखंड बनाये रखने में उन्हें सफलता न मिल सकी, तब भी—वे मेरे लिए अब तक वंदनीय महापुरुष हैं। देश को जिनका सामना करना पड़ा उन तमाम कठिनाइयों का उत्तरदायित्व अकेले गांधीजी ही के माथे मढ़ना यह तो सरासर बेवकूफी है। उन दुख-संकटों का उद्भव गांधीजी की श्रद्धा में नहीं हुआ है वरना हमारी अश्रद्धा में—अंध विश्वास में...आलस्य में.....’

दिनकर की बात काटकर मैंने कहा—‘तुम अपनी कहानी सुना रहे थे न ?’

‘अरे हाँ !’ मधुर मुस्कराहट के साथ दिनकर ने कहा। तुरन्त प्रगाढ़ गंभीरता धारण करते हुए उसने कहा—‘देख लिया न ? कितनी बड़ी गलती कर बैठा मैं ! कहानी के आरंभ में ही तुम्हें एक लंबा चौड़ा लेक्चर सुना ही दिया। समालोचकों की राय है कि इस तरह का उपदेश कहानी-कला के लिए महान्

हानिकारक होता है—’

‘वे लोग जायँ भाड़ में !’ झल्लाकर मैंने कहा —‘तुम पहले अपनी कहानी को आरंभ तो करो—’

तुलसी के सामने मंद प्रकाश में जलने वाले नीरांजन की ओर दिनकर ने पलभर भक्ति भाव से देखा । बाद में मेरी ओर देखकर वह कहने लगा—‘वसंत, यह सच है कि सन बयालीस के आन्दोलन में मेरा नाम काफ़ी चमक उठा । लेकिन जानते हो कि आठ अगस्त की रात को, लगभग आठ नौ बजे, जिस वक्त गांधीजी देश को ‘करेंगे या मरेगे’ का आदेश दे रहे थे उस समय मैं किस कार्य में निमग्न था ?’ तुरंत शरारत भरी नज़रों से अरुणा भाभी की ओर देखकर उसने कहा —‘उस रात हम दोनों एक अंग्रेज़ी पिकचर देखने गये थे । पर्दे पर दिखलाए जाने वाले उन्मत्त प्रेम से भरे एक दृश्य को देखने में हम दोनों इतने आत्मविस्मृत हो गए थे कि—’

यह बात मेरी नज़रों से छिपी नहीं थी कि आँखों आँखों के इशारे से अरुणा भाभी दिनकर से कुछ कह रही हैं । लेकिन उसके इशारे को समझकर भी, नासमझ सा बनकर दिनकर ने कहा —‘वहाँ तो गांधीजी ‘करेंगे या मरेगे’ का आदेश दे रहे थे और यहाँ मैं थिएटर में बैठ अरुणा के प्रथम चुंबन का अनुभव कर रहा था ।’

‘आप भी बड़े बेशर्म आदमी हैं...’ सलज्ज रोष-पूर्ण स्वर में अरुणा भाभी ने कहा ।

‘देख लिया न तुमने वसंत ! स्त्री चाहे कम्युनिस्ट हो या और कोई हो, हिंदू नारी तो आखिर हिंदू नारी ही रहेगी, और शायद इस बात का अनुभव तुम भी कई बार कर चुके होंगे’ हँसकर दिनकर ने कहा ।

मैं दिनकर की कहानी सुनने के लिए अधीर हो उठा था इस लिए उसकी ओर देखकर मैं सिर्फ़ मुस्करा दिया ।

दिनकर कहने लगा —‘कृपया यह न समझ बैठना कि अपनी कहानी को रोचक बनाने के लिए उसमें आरंभ ही मैंने यह चुंबन-प्रकरण घुसेड़ दिया । यह सब बताने से मेरा मतलब तो इतना ही है कि इस बात को तुम ठीक से समझ सको कि उस आठ अगस्त की रात, मैं देशभक्त बन जाने की अवस्था में किंचिन्मात्र भी नहीं था । सब लोगों के जैसा मैं भी यही चाहता था कि इस द्वितीय महायुद्ध का लाभ उठाकर हमारा भी देश स्वाधीन बन जाये । लेकिन मुझ में

इस प्रकार की उत्कट अभिलाषा नहीं थी कि इस कार्य में मुझ को भी हाथ बँटाना चाहिए। उसी वर्ष मैंने एम्. एस्. सी. का इम्तहान पास किया था। बड़े भैया सब—जज थे इस लिए सरकारी कालिज में मुझे बेखटके नौकरी मिलना कठिन न था।

माँ और भैया मुझसे लगातार अनुरोध कर रहे थे कि मैं प्रोफेसरी स्वीकार कर लूँ। लेकिन मैं चाहता था कि विदेश जाकर वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा कीर्ति प्राप्त करूँ। इसलिए उस जगह के लिए मैंने अर्जी तक न भेजी। दो तीन महीने घर पर मैं बेकार ही बैठा रहा... ' इतना कहकर अरुणाभाभी की ओर देखकर उसने कह - ' कहते हैं कि खाली दिमाग में शैतान का प्रवेश बहुत जल्द होता है। यह कहावत शायद छोटे बच्चों के लिए ठीक चरितार्थ होती हो; लेकिन युवकों के लिए इसका व्यवहार करते हुए यों कहा जा सकता है कि, ' बेकार युवक के मस्तिष्क में सुंदर युवती का प्रवेश बहुत जल्द होता है '। इन दो तीन महीनों के बीच अह के साथ भेरा परिचय किस तेजी के साथ बढ़ता गया यह तो..... '

' यह सब रामकहानी मैं इन्हें बाद में बतला दूँगी। ' बनावटी गुस्से से भाभी ने कहा। मुस्कराकर दिनकर कहने लगा—' आठ अगस्त की रात मैं बहुत देर तक इसी सोच में लीन रहा कि इस बात का जिक्र भैया और माँ के सामने किस तरह करू। दूसरे रोज़ इतवार होने के कारण भैया के दफ्तर को छुट्टी ही थी। मैंने सोचा कि कल दोपहर, भोजन के समय धीरे से यह बात भैया के कान में डाल दी जाय। रात के एक बजने के बाद मैं निद्रार्थान हो गया। लेकिन दूसरे दिन जब मैं सोकर उठा तब गांधीजी और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी की अमंगल वार्ता समूचे देश में फैल गई थी। मैं अत्यधिक व्यग्र हो उठा। सरकार के विराट दमनचक्र भीषण रूप से गतिमान हो उठे। तिरंगे झंडे को प्रकट रूप से लेकर चलना जुर्म हो गया। नन्हे नन्हे बालकों के जुलूस नृशंसतापूर्वक तितर बितर कर दिए जाने लगे। लाठी चार्ज और गोलाबारी की आँधियाँ चलने लगीं। देश में स्वातंत्र्य—लालसा की अग्नि को प्रज्वलित होते देख, उस पवित्र पावक को बुझा डालने के लिए ब्रिटिश राज के कर्मचारी वैसे ही भीषण जुल्म—अत्याचार करने लगे जैसे प्राचीन समय में ऋषियों के यज्ञों का विध्वंस करते हुए दुष्ट दानव किया करते थे। उस पवित्र अग्नि की

प्रकट रूप से रक्षा करना असंभव देख, कुछ नवयुवक अज्ञात रूप से रहकर प्राण प्रण से उसे प्रज्वलित रखने पर तुल गए। इस तरह भूगर्भीय क्रांतिवादी प्रवृत्तियाँ भी चलने लगीं। बालक-वृद्ध, पढ़ेलिखे-अनपढ़, निर्धन-धनवान, इन सब का जैसे खून उबलने लगा।

हवन-कुंड के उस पवित्र पावक को प्रज्वलित रखने के लिए अपने रुधिर-मांस की आहुतियाँ वे सहर्ष देने लगे। यह झूट नहीं है कि देशभक्ति यह प्रेम और कविता की सहोदर बहिन है और उस में भी कोई अजीब नशा सा छाया रहता है। उन दिनों इसी नशे का मैंने अनुभव किया। नदी में भीषण बाढ़ आ जाने पर, किनारे पर किसी पेड़ से बँधी नाव जिस तरह अनायास ही प्रवाहित हो जाती है, उसी तरह आंदोलन की उस बाढ़ में मैं भी बहता चला गया। कालिज में प्रोफेसर बनने के बदले, अपने ज्ञान का बम बनाने के कार्य में प्रयोग करना मैंने अधिक उपयुक्त समझा।

तेजी के साथ हवा का एक झोंका आया। नीरांजन की दीप शिखा थर्रा उठी। उस दीप-ज्योति की ओर अपलक दृष्टि से देखते हुए दिनकर ने कहा—‘माँ और भैया को इस बात की कानोंकान खबर नहीं थी कि मैं आंदोलन में सहयोग दे रहा हूँ। लेकिन मेरे बेवक्त घर आने से और चारों ओर का वातावरण देख माँ कुछ कुछ जरूर ताड़ गई थीं। वे मुझ से बार बार कहतीं—‘गांधीबाबा जो भी कुछ कह रहे हैं उसे मैं गलत कैसे कह सकती हूँ बेटा! तुम जो चाहे सो करो, लेकिन जो भी करो, अपने आप को जान जोखिम से बचाते हुए करो।’

इसी तरह कुछ दिन बीत गए। हमारे दल ने ठान लिया था कि सरकारी दमन-नीति का हर मुमकिन तरीके से विरोध किया जाय। हमारी सभाओं में निश्चय किया गया कि किसी ऐसे सिनेमाघर में दो तीन बम रख दिए जायें जहाँ पर अक्सर गोरे सिपाहियों की भीड़ अधिक रहा करती है। लेकिन जिम्मेदारी का यह काम कौन करेगा? इसका निर्णय करने के लिए चिट्ठियाँ डाली गईं और एक छोटे बच्चे के हाथ से उन सब चिट्ठियों में से एक चिट्ठी खोली गई। उतावली के साथ उस चिट्ठी पर लिखा नाम मैंने पढ़ा—‘दिनकर थोरात!’ अपने नाम को पढ़ते ही अभिमान और भय की चित्र-विचित्र तरंगें लहराती हुई मेरे मस्तिष्क तक जा पहुँचीं। एक साथ उसी क्षण, कंठ में प्रिय व्यक्ति के बाहुपाश का और पैरों में सर्प के लिपट जाने का मैंने

अनुभव किया। रात के आठ बजते ही निश्चित स्थान पर उपस्थित रहना जरूरी था इस लिए उस दिन शाम होने के कुछ पहले ही मैं घर लौट आया।

मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि दरिया के किनारे किसी ऊँची और संकीर्ण सी चट्टान पर मैं खड़ा हूँ। यदि मैं गिरफ़्तार हो गया तो भैया क्या कहेंगे। अरुणा क्या सोचेगी? माँ के दिल पर कितनी गहरी चोट पहुँचेगी! इन सब विचारों ने मुझे परेशान कर दिया। कुछ खोया खोया सा मैं घर लौटा। घर आते ही मैंने देखा तो माँ की बहुत तेज बुखार था। माँ की हालत देख मुझे आश्चर्य न हुआ, क्योंकि कि इन दिनों उनके रोज़ कुछ न कुछ शिकायत रहती ही थी। लेकिन जब माँ का जलता हुआ हाथ मैंने अपने हाथों में लेकर देखा, तो मेरा कलेजा धक् से रह गया! दिल में यह विचार आया कि इसी वक्त जाकर अपने दोस्तों से कह दूँ कि यह काम मुझसे न होगा। लेकिन तुरंत मुझे डर मालूम होने लगा कि कहीं वे सब इसे कायरपन मानकर मेरा मज़ाक न उड़ायें, कहीं मेरी ओर घृणित भाव से न देखने लगें। माँ की चरण सेवा करते हुए मैं वहीं पर बैठा रहा। लेकिन माँ ने अधिक देर तक मुझ से सेवा नहीं करवाई। मेरे दोनों हाथों को अपने कृश हाथों में लेकर...वसंत, उन जर्जर हाथों का स्मरण हो आया कि तुलसी का वह सूखा हुआ पौधा अब तक मेरी आँखों के सामने दिखाई देने लगता है जिसमें सिर्फ़ मँजरियाँ ही बची थीं।'

मैंने भाभी की ओर देखा। मेरा अनुमान था कि कम्युनिस्ट कहलाने वाली अरुणा भाभी दिनकर की इस भावुकता का शायद मज़ाक उड़ावेंगी—लेकिन वे तो किसी प्रस्तर प्रतिमा के सदृश्य निश्चल—निस्पंद सी बैठी थीं। मैंने अपनी श्रीमतीजी की ओर देखा... वे भी उसी तरह—किसी चित्र की भाँति निश्चल बैठी थीं।

तनिक गंभीर स्वर से दिनकर कह रहा था—'मेरे हाथों को अपने कृश हाथों में लेकर माँ ने कहा—'बेटा, अब मैं और ज़्यादा दिन न जीऊँगी। अब मेरी तो बस एक ही कामना बाकी है। इस घर में छोटी बहूरानी आये, उसके हाथों तुलसी भैया के सामने जलाए संध्या—दीप को प्रणाम कर लूँ...और तुम्हारी गोद में सिर रखकर.....'

माँ की बात काटकर मुस्कराते हुए मैंने कहा—'लेकिन माँ, अब वह तुम्हारा जमाना कहाँ रहा! भला इस जमाने की पढ़ी लिखी लड़कियाँ भी कहीं तुलसी के सामने दीया जलाएंगी! अरे, राम भजो! वे तो शाम के समय टहलने घूमने

वली जायेंगी—टेनिस खेलने जायेंगी—औरतों के क्लब में ताश खेलने जायेंगी—डोरोथी लामूर का सिनेमा देखने जायेंगी—’

‘तुम्हारी उस डोरोथी फोरोथी को मैं क्या जानूँ! मुस्कराकर माँ ने कहा—मैं ज़्यादा पढ़ी लिखी तो हूँ नहीं, लेकिन इतना जरूर जानती हूँ और अच्छी तरह से जानती हूँ कि हर एक पीढ़ी में भगवान नित्य नये रूप धारण कर विद्यमान रहते हैं। तुम्हारी स्त्री चाहे जिस भगवान को माने, मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन मैं उससे इतना जरूर कहूँगी कि ‘बहु, जिसे तुमने एक बार भगवान मान लिया, उसकी अर्चना में चाहे प्राण ही क्यों न अर्पित करने पड़ें, उसके प्रति अचल श्रद्धा रखे रहना’

यह कहते समय माँ की धँसी हुई उन निस्तेज आँखों में एक अपूर्व तेज झलकता हुआ भँने देखा। जिस धर्म का उन्होंने आजीवन, निष्ठापूर्वक पालन किया था, वही मानो साकार रूप धारण कर इस वक्त उनकी आँखों में प्रकट हो गया था। मेरा हाथ कसकर दबाते हुए उन्होंने कहा—‘दिनू, तुम्हारे पिता से मेरा गठबंधन हुआ और थोरात के इस घर में जब मैंने पहले पहल कदम रखा तब मैं एक नासमझ लड़की थी। लेकिन पहले ही रोज तुम्हारी दादीजी ने बड़े प्रेम से मुझे अपने पास बैठाकर कहा—‘बेटी, जिस खानदान में ‘लछमी’ बनकर तुम आई हो, वह एक प्रतिष्ठित और बड़ा खानदान है। उसकी वह प्रतिष्ठा बनाए रखने की जिम्मेदारी तुम ही पर है। शायद तुम जानती ही होगी कि महाराज शिवाजी के पुत्र संभाजी महाराज थोरातों के कुल की एक कन्या को भेगा ले गए थे, पर उनकी रखेली बनकर रहने की अपेक्षा दुर्ग की दीवार से नीचे, गहरी खाई में कूदकर प्राणों की आहुति दे देना उसने ज़्यादा पसंद किया। उसी सती की परम—पावन स्मृति में नित्य संध्या—समय तुलसी मैथ्या के सामने घी का दीप जलाने की प्रथा अपने कुल में पूर्व—काल से चलती आई है। इस बात को कभी न भूलना कि दुख में, कठिनाई में, घोर अंधेरे में यही ज्योति तुम्हारे तमोमय पथ को आलोकित करती रहेगी, तुम्हें सच्चा मार्ग दिखायेगी’—

ज़्यादा बात करने से कहीं माँ की बीमारी न बढ़ जाय इस डर से चुपचाप लेटी रहने के लिए माँ से मैंने कहा, लेकिन, ज़्यादा बुखार चढ़ जाने पर बीमार मनुष्य से तो जैसे बोले बिना रहा भी नहीं जाता। माँ लगातार कहती ही जा रही थी—‘तुम्हारी दादी के उन शब्दों का मुझे ज़िंदगी भर सहारा रहा। वही

शब्द निरंतर मेरी हिम्मत बढ़ाते रहे। दिनू, तुम्हारे पिता तो तब ही चल बसे थे जब तुम दोनों नासमझ बच्चे थे। जो भी कुछ थोड़ी सी पूँजी बची थी—रिश्तेदारों ने उसे भी हड़प लिया। तब भी मैं हिम्मत न हारी। थोरातों के कुल का उज्ज्वल नाम बनाए रखने में मैं दिन-रात, आठों पहर सतर्क रही। उन दिनों दुनिया में अन्य कोई नहीं था जो उस मुसीबत में मेरी सहायता करता—मेरी हिम्मत बढ़ाता। तब भी, तुम्हारे बड़े भैया को इतना पढ़ा लिखाकर मैंने उसे आदमी बनाया। उस समय मुझे मुसीबतों का जो भी सामना करना पड़ा था उसे तुम.....कभी कभी तो मैं बिलकुल हिम्मत हार जाती.....पर ज्यों ही संध्या-समय मैं तुलसी के सामने दीप जलाने जाती कि अचानक मन में दुगना साहस भर जाता, मेरे दिल में विचार उठते, इस नन्ही सी दीपज्योति की रक्षा करने-वाला, सिवा भगवान् के और कौन है ! यह बेचारी खुले में, तेज हवा के झकोरों के बीच, अंधेरे में, जलते हुए भी हमेशा मुस्कुराना ही जानती है...मुझको भी उसी के आदर्श पर चलना होगा.....’

दिनकर ने आहिस्ता से अपनी भीगी पलकें पोंछ डालीं और उस क्षीण दीप-ज्योति की ओर दीर्घ समय तक एकटक देखता हुआ वह मौन बैठा रहा। कहानी का अंतिम हिस्सा सुनने के लिए मैं आकुल हो उठा था लेकिन उसका वह मौन तो मुझे समाधि के जैसा प्रतीत हो रहा था। उस समाधि को भंग करते हुए मेरा दिल व्यथित होने लगा। कुछ क्षणों के अनंतर दिनकर कहने लगा—‘ओह ! कहानी सुनाते हुए मैं बीच ही में रुक गया। ना, ना—मैं कुशल अभिनेता हरगिज न बन सकूँगा। नाटक में अभिनय करते हुए अपने आप को भी भुला देना यह बात ठीक नहीं। हाँ, तो क्या कह रहा था मैं ?’ पलभर कुछ सोचने के बाद उसने कहा—‘उस दिन बाल बच्चों को अपने साथ लिए भाभी कहीं बाहर गई थीं। माँ को यह कतई पसंद नहीं था कि संध्यादीप नौकर जलाए, इसी से, उस ज्वर में भी आँगन में तुलसी के क्यारे पर दीप रखने जाने के लिए वे छटपटाने लगीं। मैंने उन्हें उठने से रोक लिया और स्वयं जाकर अपने हाथों तुलसी के सामने दीप रख आया। उस नन्ही सी, भंद दीपज्योति के आलोक ने मुझे असीम धैर्य प्रदान किया, मेरे हृदय में साहस भर दिया।

तुलसी के क्यारे पर दीया रख मैं भीतर आया तब देखा की माँ की झपकी लगी है। कहीं उनकी आँख न खुल जाये इस लिए सावधानी पूर्वक उनके चरणों-

पर मैंने अपना माथा रख दिया और घर से चल पड़ा। कुछ समय पहले मेरे दिल में उठी आँधी अब शांत हो चुकी थी।

जिस कार्य के लिए मुझे को नियुक्त किया गया या उसमें मैं सही सही उतरा। उस कार्य में तो मुझे सफलता जरूर मिली लेकिन जरासी असावधानी के कारण पुलिस की नज़र बचाकर भाग निकलने का मौक़ा मुझे न मिल सका। मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया। गिरफ़्तारी से लेकर हवालात में बंद कर देने तक मैं बिल्कुल शांत-चित्त था, अपने आप ही मुस्कुरा रहा था—खुशियाँ मना रहा था। लेकिन जैसे ही मेरी कोठरी में बाहर से ताला पड़ गया, तब मुझे प्रतीत होने लगा कि यह अँधेरा मुझे खाए सा जा रहा है। मेरी नाँद उचट गई। सुबह होते ही इस समाचार को सुनकर माँ की क्या दशा होगी—अरुणा को कितना दुख होगा—बड़े भैया किस तरह बिगड़ पड़ेंगे—इन समस्त विचारों ने मुझे बेचैन कर दिया। पलभर...पलभर ही मेरा चित्त डाँवाडोल होने लगा। मैंने सोचा, न जाने कहाँ से यह आफ़त मैंने मोल ली। युद्धक्षेत्र में धायें धायें करती हुई, कानों के पास से होकर निकल जाने वाली गोलियों के बीच भी प्रसन्न—चित्त से काम करना सिपाही को उतना नहीं अखरता जितना कि बिना किसी से बातचीत किए एक महीने तक चुपचाप बिस्तर पर लेटे रहना.....

सरकारी तौर से मुक़दमे की जाँच शुरू हो गई। प्रतिदिन अदालत में पहुँचने पर मैं प्रसन्न मुद्रा से, मस्तक उन्नत कर, सब की ओर सगर्व देखते हुए, शान के साथ खड़ा रह जाता। लेकिन संध्या-समय जेल की कोठरी में दुबारा आ गिरते ही मुझे प्रतीत होने लगता कि जैसे मेरे दिल पर सहस्रों बिच्छू एक साथ डंक मार रहे हों। एक एक कर सैकड़ों स्मृतियाँ याद आने लगतीं और कलेजा नोच नोच कर मेरी छटपटाहट को और भी बढ़ा देतीं। अरुणा का वह एक मात्र जुंबन मुझे बार बार याद हो आता—बीमार माँ की मूर्ति निरंतर आँखों के सम्मुख आ खड़ी हो जाती। सिनेमा घर में मैंने जो बम रखा था उसके विस्फोट के कारण एक ग़ोरा सिपाही घटना-स्थल पर ही मर गया था और तीन सज़ा पायाल हो चुके थे। लोग कहते थे कि जिन अफ़सरों के सामने मेरा मुक़दमा चल रहा है, वे इतने कमीने हैं कि अपने प्रमोशन के लिए उनकी अपनी माँ के गले पर छुरी फेरते हुए भी उन्हें रंच-मात्र दुख न होगा। इस दशा में मैं सोचने लगा कि न जाने मुझे आजन्म कारावास भुगतना पड़ता है

या फाँसी.....

मुझे भयानक सपने दिखाई देने लगे। जैसे पहाड़ की चोटी सी कोई मुझे किसी गहरी खाई में गिरा रहा है—बिजली की कुर्सी पर बिठाकर मेरे करेन्ट छुआया जा रहा है।.....मुझे एक दीवार के सामने खड़ा कर दिया गया है और मेरे सीने पर गोरे सिपाही बंदूक का निशाना लगा रहे हैं...इस तरह के सपनों ने मुझे आठों पहर भयाकुल बना दिया। दिमाग में दिन रात एक ही विचार बार बार आने से मुझे डर लगने लगा कि कहीं मैं सच में पागल न हो जाऊँ। यह कहते हुए मुझे शर्म भी लगती है वसन्त, लेकिन मेरी धारणा है कि सत्य को छिपाए रखना यह तो अपने जीवन से प्रवंचना करने जैसा है, यह मानवता का पतन है, इसीलिए कहता हूँ कि दो चार बार तो मेरे दिल में आया कि झट् माफ़ी माँग लूँ और अपने हृदय के इस बोझ को कुछ हल्का कर लूँ।’

नीरांजन की ज्योति अब बिल्कुल क्षीण हो चुकी थी। दिनकर की यह स्वीकारोक्ति मेरी धारणा के विपरीत थी। यह देखने की लालसा मुझ में प्रबल हो उठी कि दिनकर के मुँह से उसकी दुर्बलता की स्वीकारोक्ति सुनकर अरुणा भाभी की मुखाकृति में कौनसा परिवर्तन होता है; लेकिन उस धुँधले से प्रकाश में उनका मुख मुझे ठीक से दिखाई नहीं दे रहा था। दिनकर अपनी कहानी सुनाता ही जा रहा था। मुझे प्रतीत होने लगा कि मंदिर के घंटारव जैसी गंभीरता उसके कंठस्वर में अवतीर्ण हो गई है।

वह कह रहा था—‘ वसंत, यहाँ तो मेरा मन इस तरह डाँवाडोल हो रहा था और वहाँ बड़े भैया घर से, किसी न किसी के द्वारा लगातार संदेश भेजते ही जा रहे थे कि ‘ माँ की आँखों से सावन भादों की झाड़ियाँ लगी हैं.....अब वे चंद ही दिनों की मेहमान हैं.....यदि तुम चाहते हो कि माँ और कुछ दिन जीवित रहें तो कम से कम उन्हीं की खातिर माफ़ी माँग लो— ’

और एक दिन तो बड़े भैया स्वयं मुझसे मिलने के लिए जेल में आ धमके। मुझे देखते ही उनका हृदय भर आया और कंठ अवरुद्ध हो गया। भैया के उस असीम स्नेह को देखकर मेरा दिल पसीज गया। मैंने सोचा, केवल माँ और अरुणा ही के लिए नहीं, वरन बड़े भैया के लिए भी मुझे जीवित रहना ही होगा। भैया एक ऊँचे ओहदे पर सरकारी अफसर थे और मेरी रिहाई के

लिए उन्होंने भरसक कोशिश भी की थी । लेकिन जबतक मैं क्षमा याचना नहीं करता, उनकी प्रार्थना पर विचार करने के लिए सरकार किसी तरह तैयार नहीं थी। अंत में भैया ने मुझे माँ की शपथ दिलाई । माफ़ी-नामे पर हस्ताक्षर करने की मैंने स्वीकृति दे दी ।

दूसरे रोज़ माफ़ी-नामा लेकर भैया आने वाले थे । मैंने सोचा कि उस माफ़ी-नामे पर हस्ताक्षर करने की अपेक्षा अच्छा तो यही होगा कि अपने हाथों अपना गला घोट लूँ और इन सब झंझटों से छुटकारा पा लूँ । लेकिन तुरन्त मैंने अपने आप को सांत्वना दी । दिल में सोचा, कि दुनिया का व्यवहार तो इसी तरह हृदय—हीन ही होता है । बिना कुछ सोचेसमझे भावनाओं के पीछे भटक जाने वाले व्यक्ति को उनकी ज्वालाओं में इसी तरह झुलसना पड़ता है और सतर्कता से चलने वाले व्यवहार—कुशल व्यक्ति उसी ज्वाला पर अपना उल्लू सीधा करते हैं । अपने प्रिय व्यक्ति का शरीरांत हो जाने पर मनुष्य स्मशान भूमि तक ही उसका साथ देता है, उसके साथ वह चिता पर थोड़े ही सो जाता है ! दो दिलों में, विरोधी भावनाओं में चलने वाले अंतर्द्वंद्व का उसी दिन मैंने अनुभव किया—लेकिन नहीं, वह दो दिलों में चलने वाला अंतर्द्वंद्व नहीं था, वह तो थी दो उन्मत्त साँडों की मुठभेड़ थी ! मेरे दोनों दिल रक्त—रंजित होकर कराहने लगे, लेकिन दोनों में से कोई भी एक दूसरे पर विजय न पा सका ।

दूसरे दिन भैया के आने का समय जैसे जैसे समीप आने लगा वैसे वैसे मेरे कलेजे की धड़कन उग्र रूप से बढ़ने लगी । दिल में कई बार विचार उठा कि एका-एक भूचाल आकर यदि जेलखाने की यह इमारत ही धराशायी हो जाय तो...मैंने खिड़की से बाहर देखा । सूर्य की किरणें कुम्हला गई थीं । तभी कोठरी का दरवाजा खटखटाने का शब्द सुनाई दिया । उसी क्षण अनेक चल-चित्र मेरी आँखों के सन्मुख दिखाई देने लगे ।—अरुणा का चुंबन—माँ के आँसू, वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए विदेश जाने की मेरी आकांक्षाएँ—और इसी तरह की अनेक अतृप्त लालसाएँ । कल्पनाचक्षु के द्वारा उन सब की ओर देखते हुए मैंने कोठरी के दरवाजे की ओर एक नज़र देखा—भैया अपने साथ माफ़ी-नामा ले आए होंगे । अनिच्छा से क्यों न हो, उस पर मुझे दस्तखत करना ही होगा—यह सोच ही रहा था कि तभी दरवाजा खुल गया । लेकिन जैसा कि मैंने सोचा था, दरवाजे में मुझे भैया नहीं दिखाई दिए । हे ईश्वर ! वे तो स्वयं माँ थीं । कंकाल के समान

जरा—जीर्ण काया...मुद्रा पर असीम शोक.....एक एक डग रखती हुई वे मेरे निकट आ पहुँचीं। माँ की शोकाकुल मुखमुद्रा देख मेरा कलेजा मुँह को आ गया। माँ के गले से चिपक जाने के लिए मैंने अपनी दोनों बाहें फैला दीं... पर अपेक्षाकृत शांत एवं रूखे स्वर में माँ ने कहा—‘दूर हटो दिनू—मुझे मत छूना।’

हैरान होकर मैं माँ की ओर देखता ही रह गया। व्याकुल कंठ—स्वर से उन्होंने पूछा—‘दिनू, क्या यह सच है कि तुम माफ़ी माँगना चाहते हो?’

‘जी’ कहकर मैंने सिर झुका लिया

यह सुनकर माँ अवाक रह गई!

पलभर के बाद मैंने नजर उठाकर देखा। माँ की आँखों से गंगा—जमुना बह रही थीं।

गद्गद कंठ से मैंने कहा—‘माँ ...’

कठोर स्वर में माँ ने कहा—‘दिनू, आज से मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ न तुम मेरे पुत्र। मैं नहीं चाहती कि थोरात के कुल में जन्म लेकर भी, माफ़ी माँगने-वाले कुपुत्र की माँ कहलाऊँ। काश भगवान मुझे एक ही पुत्र देता। ... दिनू’ तुम्हारी रग रग में मराठों का रक्त संचालित हो रहा है...और खानदानी मराठा तो वही है जो सिर कटा देता है पर किसी भी दशा में उसे झुकाना पसंद नहीं करता। मैं हैरान हूँ कि इस बात का विस्मरण तुम्हें क्यों कर हो गया? थोरातों के कुल का गौरव—मराठों की जाति की मर्यादा—तुम्हें इतनी सी चोट लगने पर मेरा कलेजा टूक टूक हुआ करता था—लेकिन अब मैं चाहती हूँ कि इस तरह खानदान के नाम पर कलेक पोतकर दुबारा घर में कदम रखने की अपेक्षा तो तुम.....’

माँ क्रोध से थरथर काँपने लगीं। उनके कंठ से शब्द नहीं निकल रहे थे। मुझे डर लगा कि कहीं वे मूर्छित होकर यहाँ पर गिर न पड़े। उन्हें अपने हाथों का सहारा देने के लिए मैं दो डग आगे बढ़ा लेकिन वे लड़खड़ाते हुए दीवार के सहारे खड़ा रही और कहा—‘ठहरो दिनू, पहले मुझे वचन दो। वादा करो कि माफ़ी—नामे पर तुम किसी हालत में दस्तखत न करोगे। तब तक तुम हर गिज मुझे स्पर्श नहीं कर सकते।...वर्ना...वर्ना...दिनू, नाहक तुम थोरात के कुल में पैदा हुए—तुम दबाकर भागना यह तो कुत्तों का धर्म है। शेर का बच्चा तो वही है जो...’

माँ दुबारा सिहर पड़ीं। उनकी ओर मैंने गौर से देखा। माँ के मुखमंडल पर एक अनूठे, दिव्य तेज की दीप्ति प्रस्फुटित हो उठी थी। इस समय मेरे सामने एक सामान्य वृद्धा नहीं खड़ी थी—पीढ़ियों से लेकर थोरात के कुल का सगर्व अभिमान करने वाली वह हमारी कुलदेवी थी, वह मूर्तिमान् श्रद्धा थी!!... एक बार इसी माँ ने सरकारी नौकरी स्वीकार कर लेने के लिए मुझे को आग्रह किया था। आंदोलन में मेरे सहयोग देने पर एक बार इसी माँ ने आँखों में आँसू भरकर मुझे सावधान किया था कि—चाहे जो भी करना लेकिन अपने आप को खतरे से बचाकर करना। इस बात को वे कभी समझ न पाईं कि विदेशी सरकार क्या है। आंदोलन क्या है इसकी उन्हें तनिक भी कल्पना नहीं थी—तब भी उन्हें जिस बात का ज्ञान था—जिस पर उनकी अटल श्रद्धा थी उसी श्रद्धेय—वस्तु के लिए महान् से महान् त्याग करने लिए भी वे सदैव, सहर्ष प्रस्तुत थीं। माँ में यह भी कहने का साहस था कि माफ़ी माँगकर थोरातों के कुल की मर्यादा को कलंक लगाने की अपेक्षा, यही बेहतर होगा कि उनका प्यारा पुत्र मुस्कराते हुए फाँसी पर चढ़ जाये।

माँ के उन शब्दों का मुझे अचानक स्मरण हो आया—‘चाहे जिसे भी भगवान् मान लो लेकिन जिसे एकबार भगवान् मान लो, उसकी अर्चना में चाहे प्राणों का बलिदान क्यों न करना पड़े, उसके प्रति अचल श्रद्धा रखे रहो’ सिसकते हुए मैं माँ के पैरों पर गिर पड़ा और कहा—‘माँ मुझे माफ़ कर दो। मैं गलत रास्ते पर जा रहा था!’

मुझे ऊपर की ओर उठाकर माँ ने अपने कलेजे से चिपका लिया। कहा—‘बेटा, कल रात जब तुम्हारे बड़े भैया के मुँह से सुना कि तुम माफ़ी माँगने वाले हो, तब से तमाम रात मैं छटपटाती रही, पूरी रात रो रो कर बिता दी मैंने। जिस रोज़ क्रूर दुर्भाग्य ने मेरी माँग का सिंदूर मिटा दिया था, वही अमंगल दिन मुझे दुबारा याद हो आने लगा। तुम्हारे बड़े भैया से मैंने झूठमूठ ही कहा कि शायद रात भर में दिनू का मन बदल गया हो और आज वह माफ़ी माँगने से कहीं दुबारा इन्कार न करे इस लिए मुझे भी अपने साथ जेल ले चलो। पहले अकेले में मैं उससे मिलूँगी, उसे मना लूँगी, बाद में आकर तुम उससे माफ़ी—नाम पर दस्तखत करा लेना—तुमारे भैया इस वक्त बाहर बैठे हैं।’

माँ ने दुबारा मुझे अपने कलेजे से और भी ज़्यादा कसकर चिपका लिया।

उनकी आँखों से बहने वाले आँसू मेरे मुख पर टपकने लगे। बचपन की भाँति माँ की गोद में मुँह छिपाकर मैंने कहा— ‘माँ, अब तुम्हारा दिनू माफ़ी हरगिज़ न माँगेगा, चाहे उसे कोई आग में क्यों न झोंक दे। तुम्हारे ये आँसू ही उस आग से उसकी रक्षा करेंगे मा।’

सहसा मेरी दृष्टि तुलसी के क्यारे की ओर गई। नीरांजन में जलनेवाली दीपज्योति अभी अभी जलकर शांत हो गई थी। गद्गद् स्वर से दिनकर ने कहा— ‘मैं जेल ही में था, उसी बीच माँ स्वर्ग सिधार गई। बाद में सुना कि अंतिम समय के दो तीन दिन पहले वे होश में नहीं थीं, लेकिन उस बेहोशी में भी रह रहकर वे चीख पड़ती थीं कि—‘छोटी बहुरानी कहाँ है—उससे कहो कि तुलसी के सामने दीया जलाने का समय हो चुका है।...’

माँ की स्मृति से व्याकुल हो कर दिनकर ने आँखें मूँद लीं और वह निःशब्द बैठा रहा। मैंने अपनी दृष्टि अकाश-मंडल की ओर लगा दी—आसमान में तारे टिमटिमाने लगे थे.....

दूसरे ही क्षण मैंने दिनकर की ओर देखा। तुलसी के क्यारे पर मुस्कराने वाली दीपज्योति की वह वन्दना कर रहा था। मैं विस्मित हो उठा। वह दीपज्योति तो कुछ क्षण पहले ही जलकर शांत हो चुकी थी.....तुरन्त मेरा ध्यान अरुणा माभी की ओर गया। शायद उन्होंने तेज़ी से भीतर जाकर नीरांजन में घी डालकर उसे दुबारा जलाकर यहाँ ला रखा था और दोनों हाथ जोड़कर उस दीपज्योति के सम्मुख वे भी अपना माथा विनम्र किये खड़ी थीं।



शे शब्द

‘संध्यादीप’ यह हिंदी संसार के रसिक पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जानेवाला, मेरी कुछ कहानियों का पहला ही संग्रह है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ इन्हीं दिनों, विगत पाँच साल में लिखी गई हैं।

इसका मतलब यह नहीं कि मेरे कहानी लेखन का आरंभ भी इन्हीं दिनों हुआ है। तीस वर्ष के पूर्व मैंने पहली कहानी लिखी और सन १९२६ से लेकर अब तक लगातार कहानियाँ लिखने का मेरा काम जारी ही है। वृक्ष-वल्लरियों की भाँति साहित्यकार की सृजन शक्ति के भी मौसम होते हैं। किसी समय उसकी तृप्तिभा में बहार आती है, वह फलती फूलती है और कभी कभी उसकी साहित्य-सृजन शक्ति में शिथिलता भी आ जाती है। मेरे लिए भी यही हुआ। विषय-स्तु से लेकर रचना के अंत तक, समय एवं परिस्थितियों के कारण भी लेखक प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त एक और भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे देश के विगत पचीस वर्षों ने जीवन के उत्थान पतन का और अंधेरे जाले का इस कदर अत्यधिक मात्रा में अनुभव किया है कि ऐसा कोई स्थितप्रज्ञ लेखक बिरला ही होगा कि जिसका साहित्य इस महान् परिवर्तनकारी सामाजिक, सामाजिक जीवन से प्रभावित न हुआ हो।

समय एवं परिस्थितियों से जिस तरह कला के रूप विधान प्रभावित होते हैं, वही तरह स्वयं कलाकार के जीवन से भी कला अवश्य प्रभावित होती है। लगातार कई वर्षों से, नियमित रूप से साहित्य-सृजन करने वाले लेखक के साहित्यिक गुणों में कुछ चढ़ाव उतार हो जाने पर रसिक पाठक इस फर्क को आंशिक मात्रा में ही अनुभूत कर सकते हैं। लेकिन परिस्थितियों के कारण लेखक के सामाजिक एवं जीवन-विषयक दृष्टिकोण में होनेवाला परिवर्तन अप्रत्यक्ष ही और वह फर्क किसी की नज़रों से कदापि छिप नहीं सकता।

मेरी प्रारंभिक और वर्तमान कहानियों की अभिव्यक्ति के ढंग में दृष्टिगोचर होनेवाला परिवर्तन देखकर मैं स्वयं विस्मित हूँ, तब उसे लक्ष्य कर यदि पाठकों को हैरान होना पड़े तो उस में कोई आश्चर्य नहीं।

इस दशा में उचित तो यह होता कि हिंदी में अनुवादित होनेवाले मेरे कहानी-संग्रहों का लेखन काल के क्रम के अनुसार विभाजन किया जाता। इस तरह का विभाजन साहित्य का परिशीलन करने वाले पाठकों के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध होता है। लेकिन अक्सर देखा जाता है कि ललित साहित्य के पाठकों में, साहित्य का अध्ययन करनेवाले पाठकों की अपेक्षा रसिक पाठकों ही की संख्या प्रचुर मात्रा में होती है और उसमें अपेक्षित आयु वालों की अपेक्षा युवक ही संख्या में अधिकतर पाये जाते हैं। जिन कहानियों में इस बहुसंख्याक वर्ग के पाठकों की अनुभूति एवं जटिल समस्याओं का निर्देशन यथेष्ट रूप में किया गया है, जिन कहानियों में वर्तमान समय का प्रतिबिम्ब हम देख पाते हैं, और जो कहानियाँ पाठकों को सब से अधिक आकृष्ट और प्रभावित कर सकेंगी ऐसी ही कुछ चुनी हुई कहानियों का एक संग्रह सर्व प्रथम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा इसी दृढ़ धारणा से हिंदी संसार के सम्मुख 'संध्यादीप' लेकर मैं उपस्थित हो रहा हूँ।

कहानी के अंतरंग की विवेचना करना यह कार्य तो कविता का अन्वय-अर्थ विषद करने जैसा है इस बात को मैं भलीभाँति जानता हूँ। तब भी, इस विषय में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। प्रसंगवश मराठी के कई पढ़े लिखे पाठकों से मेरी मुलाकात होती है, उन में से कईओं के मुँह से मैं सुनता हूँ—'कहानी तो आप की एकदम सुंदर है पर उसका रहस्य हमारी समझ में ठीक से न आ पाया'। न जाने यह उनकी रसिकता की कमजोरी है या मेरी ही कला में कोई त्रुटि है! इस श्रेणी के पाठकों के लिए 'संध्यादीप' की कहानियों की मैं संक्षिप्त विवेचना कर रहा हूँ।

गांधीजी के प्रति नितांत आदर होने पर भी गांधीवाद की एक त्रुटि-व्यक्तिगत नीति के संपूर्ण सिद्धांतों को, उनमें बिना तनिक भी परिवर्तन किए सामूहिक नीति के लिए प्रयुक्त करना—मुझे नित्य खटकती है। रविन्द्रनाथ का एक वाक्य बड़ा ही मार्मिक है—*Man is kind but Men are cruel* ('मनुष्य स्वभावतः दयालु प्राणी है परन्तु मानव समाज अत्यन्त क्रूर है) यह कथन केवल एक सुन्दर उक्ति ही नहीं, परन्तु इस में एक अमर सत्य भी अंतर्निहित है। इतिहास, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र भी अपनी गवाही उसी सत्य के पक्ष में देंगे जो इस

उक्ति में ध्वनित है; परन्तु गांधीजी की तत्त्वप्रणाली में इस सत्य के प्रति जाने अनजाने उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया गया है। एक धर्म, एक राष्ट्र अथवा एक श्रेणी के उपांग के नाते, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति आत्मीयता का व्यवहार आसानी से कर सकता है। किन्तु अन्य धर्म, राष्ट्र अथवा श्रेणी के प्रति व्यवहार करते हुए उसी आत्मीयता का, उतनी ही मात्रा में प्रकट होना कदापि संभव नहीं है। व्यक्ति के मन में आंशिक मात्रा में कवि का मन अंतर्निहित हो सकता है किन्तु जनसमूह का मन तो अधिकतर, समालोचकों के मन जैसा होता है। द्वेष अथवा प्रतिशोध की भावना का आवाहन समूह में अनायास ही हो सकता है पर समूह के प्रेम को जागृत करता उतना आसान नहीं है।

अहिंसा यह उन्नतिशील मानव जीवन का एक प्रधान तत्त्व है। परन्तु व्यक्ति का मन तथा समाष्टि का मन, इन दोनों के बीच के अंतर को भुलाकर, अहिंसा को प्राधान्य देनेवाले व्यक्ति की अंत में द्वार ही होती है, इस पृष्ठभूमि पर 'शांति' यह रूपक कथा लिखी गई है। 'दो प्रेतात्माएँ' इस रूपक कथा में यह कटुसत्य सूचित किया गया है कि जब तक निज के परिश्रम तथा परमेश्वर पर अधूरा विश्वास करने वाले लोगों की संसार में अधिकता है, तब तक उन्हें मार्गदर्शन करने वाले विचारशील सज्जनों का उनके द्वारा तिरस्कृत, अपमानित होना अनिवार्य है। 'शिखर' इस कथा में, बाह्य रूप से मोह उत्पन्न करने वाले परन्तु अंत में धोखा देने वाले जीवन-मूल्याँ का पीछा पकड़ने के कारण मनुष्य को जो दुख भोगना पड़ता है उसका चित्रण किया गया है।

शेष कहानियों में 'संध्यादीप' यह कहानी मराठी के सभी श्रेणी के पाठकों की अत्यन्त प्रिय कहानी है। इस कहानी की रचना देशभाक्ति की नींव पर होने के कारण उसका पाठकों को पसन्द आना स्वाभाविक ही था। लेकिन स्वयं मुझ को तो इस कहानी की अपेक्षा 'सोने की गाड़ी' और 'दो नारंगियाँ' ये कहानियाँ अधिक प्रिय हैं। मराठी में 'संध्यादीप' यह कहानी छपी नहीं थी कि मराठी के मशहूर 'किलोस्कर' मासिक में 'खांडेकरजी ने संध्यादीप यह कहानी किस तरह लिखी?' इस शीर्षक से किसी ने प्रकाशनार्थ एक लेख भेजा था। कहानी के शीर्षक से लेकर कहानी के अंत तक, उस में के छोटे बड़े प्रसंगों के हर एक अंग उपांग का मैंने किस तरह सहेतुक और कलात्मक ढंग से चित्रण किया है, इन सभी बातों का इस लेख में सुविस्तृत एवं काल्पनिक वर्णन किया गया था।

उस लेख को पढ़कर मैं अपनी हँसी रोक न सका। मुझे तो संकल्पित रचनाओं के ढाँचे बनाने तक के लिए भी प्रायः अवसर प्राप्त नहीं होता है। और यदि प्राप्त हुआ भी, तो मुझ जैसा लापरवाह और अधीर प्रवृत्ति का व्यक्ति इस तरह के यंत्रवत् जीवन क्रम में जकड़े रहना कदापि पसंद न करेगा। इस कहानी में की माँ कहती है..... 'तुम चाहे जिसे भी भगवान मान लो लेकिन जिसे तुमने एक बार भगवान मान लिया, उसकी अर्चना में चाहे प्राणों का बलिदान क्यों न करना पड़े, उसके प्रति अपनी अटल श्रद्धा रखना।'—माँ की यह जीवन-श्रद्धा ही इस कथा की प्रेरक आत्मा है। आगे चलकर इस आत्मा को देह की प्राप्ति किस तरह हुई यह कहानी रोचक होने पर भी यहाँ पर उसका वर्णन अनुपयुक्त सिद्ध होगा।

सरसरी तौर से देखा जाय तो 'सोने की गाड़ी' यह एक पारिवारिक कहानी है। लेकिन मानवीय जीवन को विशुद्ध एवं प्रगतिशील बनाए रखने के लिए हम में जिस जीवन-श्रद्धा का वर्तमान होना नितांत आवश्यक है, वही, आधुनिक जीवन क्रम में किस तरह धीरे धीरे विलुप्त होती जा रही है इस समस्या की पृष्ठभूमि पर मैंने इस कहानी का निर्माण किया है। इस कहानी के दादासाहब स्वयं सीधेसादे एवं विशुद्ध चरित्र के एक व्यक्ति हैं। मंत्री बनने की उनकी प्रबल अभिलाषा अप्राकृतिक नहीं है। उनकी देशभक्ति यह केवल बाह्य आडंबर की चीज नहीं है। किन्तु कीर्ति, धन और स्वयं की महत्त्वाकांक्षा की तृप्ति के नशा में चूर हो जाने के कारण अनजाने ही उन्हें जीवन के सब से महान् कर्तव्य का विस्मरण सा हो जाता है। इस में कोई संदेह नहीं कि जल के अभाव से सूख जाने वाले पौधों की जड़ों के समान, गरीबी की सासत के बीच पलने वाले बालक भी चरित्रहीन बन जाते हैं। लेकिन इस निर्धनता से बढ़कर धन की अधिकता ज़्यादा भयानक होती है ! धन की अधिकता दुर्गुणों एवं बुराईयों की खान है। जल के आधिक्य से जिस तरह पेड़ों की जड़ें सड़ जाती हैं, उसी तरह धनवानों के बालकों के मन चंचल, भोगविलास में लीन एवं पाप-प्रवृत्त होने की सदैव संभावना होती है। इस कहानी के 'भैय्या' के विषय में भी यही हुआ है। उसके पतन का दोष पूर्णतया उसी के मत्थे मढ़ना यह उसके प्रति सरासर अन्याय करना होगा। इस पाप में उसके सज्जन पिता और गृहस्थी में कार्यकुशल उसकी माँ—ये दोनों ही समान रूप से सहयोगी हैं। विषम परिस्थिति में भी दादासाहब की बुद्धि और आत्मा का संवर्धन करने में उनके निर्धन पिता अत्यंत सतर्क रहे।

वह एक सामाजिक ऋण था। लेकिन धन एवं थोड़े बड़प्पन के घमंड में उस ऋण से विमुक्त होने का दादासाहब को जैसे विस्मरण सा हो जाता है। परिस्थिती की पूर्णतया अनुकूलता होने पर भी वे अपने कर्तव्य के प्रति विमुख रहते हैं। हमें प्राप्त विद्या, सदाचार तथा संस्कृति का उत्तराधिकार भविष्य की पीढ़ी को भी प्राप्त होना जरूरी है। इसके प्रति सतर्क रहने के लिए हम में जिस जीवन-श्रद्धा का वर्तमान होना आवश्यक है वही आजकल के परिवारों में विलुप्त होती दिखाई दे रही है। हमें पाप की जिदगी क्यों न बसर करनी पड़े पर हमारी संतान बंगले में रह पाए, वह मोटर में बैठकर सैर सपाटा करे, वे बड़ी जायदाद के मालिक बनें बस इसी में हम दिन रात चिन्तित रहते हैं, प्रयत्नशील रहते हैं। दुनिया में जीवन-यापन के लिए आवश्यक और उस दुनिया के विकास में भी सहायता प्रदान करने वाले चरित्र गठन का विकास हमारी संतान में करने के लिए हमें अवकाश ही कब प्राप्त होता है ! बच्चों के स्कूल, कालिज की फीस दे दी, उनकी पढ़ाई के लिए घर पर कोई अध्यापक नियुक्त कर दिया, रंग बिरंगी और आद्यतन पोशाक से विभूषित हो, वे समाज में शान के साथ घूमने, टहलने लगे, नृत्य, संगीत आदि कलाओं में अथवा टेनिस, क्रिकेट जैसे खेलों में उन्होंने निपुणता प्राप्त कर ली कि हम स्वयं को कृतार्थ मानने लगते हैं ! संतान को जन्म देना अत्यंत सुगम है पर उन्हें इन्सान बनाना यह तो एक कठोर तपस्या है। इस तपस्या के लिए जिस त्याग और तत्त्वनिष्ठा की आवश्यकता होती है, उसी का आज हम में अभाव है। हमें प्रायः इस बात का विस्मरण हो जाता है कि जैसे जैसे बालकों की आयु बढ़ती जाती है, वैसे वैसे उन्हें आत्मपरीक्षण का ज्ञान देना नितांत आवश्यक है। उनके सामाजिक मन को जागृत करने के उत्तरदायित्व का भी हमें विस्मरण हो जाता है, उनके चरित्र-गठन की ओर हम ध्यान ही नहीं दे पाते, उनके अपरिपक्व मन पर इस बात का प्रभाव छोड़ने की हम चेष्टा ही नहीं करते कि जो धन हमें प्राप्त है, उसकी प्राप्ति तो केवल संयोग वश ही हुई है।

दादा साहब जैसे व्यक्ति को भी—जो इन सब बातों को क्रियान्वित करने की क्षमता रखते थे—इस बात का बिल्कुल विस्मरण सा हो जाता है कि वे अपनी संतान के और पर्याय से देश की भविष्य की पीढ़ी के शिल्पकार हैं। यदि माता पिता ही इस श्रद्धा से—जो कि जीवन का सबसे महान् सहारा है—प्रवंचना करें तो उन्हें दुःख के सिवा और अन्य किस बात की प्राप्ति हो सकती है !

पुलिस स्टेशन की ओर जाते समय दादा साहब की व्याकुल मनोवृत्ति देख उनके ड्राइवर के मन में विचार आता है कि 'यह मोटर नहीं है ! यह तो कहीं का एक भद्दा सा ठेला है और दादा साहब को उस में बिठला कर, वह उन्हें फाँसी के तख्ते पर लटकाने के लिए ले चला है ।'

'दो नारंगियाँ' इस कहानी की पार्श्वभूमि अधिक विस्तृत है परन्तु उसमें भी जीवन के लिए मूलाधार एक श्रद्धा का—मानवता का—विषय चित्रित करने की चेष्टा की गई है । कई पाठकों को इस कहानी का शीर्षक कुछ हास्य—जनक सा प्रतीत हुआ । यह तो मेरा सौभाग्य है कि पाठकों ने यह नहीं कहा कि यह कहानी किसी माली या बागवान के जीवन पर लिखी गई है । जीवन का श्रेष्ठतम हिस्सा देशसेवा में व्यतीत कर देने के कारण निर्धन और घर में ज्वर से कराहती हुई भानजी के लिए बाज़ार से दो नारंगियाँ खरीद लाने की चिंता में व्यग्र कवि इस कहानी का नायक है । कहीं से पाँच रुपए माँग लाने के लिए दिल में बड़ी बड़ी उमंगें लिए वह संपादक, डॉक्टर, चित्र निर्माता आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मुलाकात करने के लिए जाता है । वहाँ पर उनके बहिर्मुख जीवन, विलासी मन, तथा चेतना रहित आत्मा का वह निकट से अवलोकन करता है । उन दृष्टियों को देखने पर उसे आभास होने लगता है कि उच्च जीवन—मूल्यों के प्रति उसकी श्रद्धा—जो दरिद्रता के कारण इन्हीं दिनों कुछ कुछ ढाँवाडोल हो रही थी—अब कहीं सहसा विनष्ट न हो जाय ! वह सकपका जाता है । ठीक इसी समय पराई स्त्री की बेइज्जती करने के अभियोग पर अर्धरात्रि के समय कोतवाली में दूँसे गए हथकटे जगू से उसकी मुलाकात होती है । वह अनुभव करने लगता है कि सदाचार संपन्न जीवन के लिए और आत्मा पर कलंक लगने से बचने के लिए दरिद्रता में भी मनुष्य किस तरह प्रयत्नशील एवं सतर्क रह सकता है ! उसे दिखाई देता है कि विवश होकर किसी चित्र निर्माता के पास रखैल के नाते रहनेवाली जगू की स्त्री उसके लुंज—अपाहिज, निर्धन पति का पता पाते ही उस संपूर्ण वैभव को—भोग विलास की उस समस्त सामग्री को—ऐश आराम को ठुकरा कर प्रेम-विह्वल हो, उसके बाहुपाश में लिपट जाने के लिए दौड़ती हुई कोतवाली में आ पहुँचती है । आत्मा की सामर्थ्य और जीवन की शुचिता पर से—कुछ समय पहले मिट जाना चाहनेवाली उसकी श्रद्धा जैसे दुबारा सचेतन हो उठती है ! इस बात का कवि को विश्वास हो जाता है कि अधिकार, संपत्ति, प्रतिष्ठा एवं बड़प्पन के मद

में चूर रहने वाले लोगों की अपेक्षा यथार्थ का जीवन रस तो—जगू और शेवंती जैसे—जिन्हें दुनिया में कोई नहीं जानता—सत्प्रवृत्त व्यक्तियों में ही प्राप्त होता है। बीमार भानजी के लिए दो नारंगियाँ तक खरीदने में वह असमर्थ है यह सच होने पर भी अब कवि अश्रद्धा के कारण व्यग्र और चंचल नहीं है। मुस्कराकर वह अपनी भानजी से कहता है — ‘मैं भी कल स्वप्न ही में तुम्हारे उस जादू के बगीचे में जा पहुँचा था। मैंने भी वहाँ पर दो नारंगियाँ पाई—उन जादू की नारंगियों में से एक का नाम है जगू और दूसरी का नाम है शेवंती।’

वर्तमान भयानक आर्थिक विषमता और सामाजिक क्रांति की भ्रांतिपूर्ण धारणाओं के कारण सरल जीवन—मूल्यों को आज बनावटी और विकृत स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसी का चित्रण ‘तीन जगत्’ इस कहानी में किया गया है। इसमें संदेह के लिए गुंजाइश ही नहीं है कि वर्ग—समन्वय के तत्त्व को गांधीजी ने प्राणप्रण से अपनाया है। गांधीजी के एक एक शब्द में शाप की सामर्थ्य निहित होने के कारण उन्हें खुश रखने के लिए बड़े बड़े पूँजीपति उनके सन्मुख सदैव सिर झुकाए खड़े रहते थे। इस बात को कोई भी सुयोग्य व्यक्ति कदापि अस्वीकार नहीं करेगा कि हमारी वर्तमान समाज रचना में अब तक तीन विभिन्न जगत् अस्तित्व में हैं। पहला जगत् है धनवानों का, दूसरा निम्न श्रेणी के व्यक्तियों का—गरीबों का और इन दोनों की सीमा के बीच में तीसरा जगत् है मध्य श्रेणी के लोगों का। प्राचीन काल में धन के बल पर राजा लोग तरह तरह के खुशामदी टटू अपने यहाँ पाल सकते थे उसी तरह वर्तमान समाज रचना में पूँजीपति भी विभिन्न उपायों द्वारा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। गांधीजी के सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि तत्त्वों की दिनरात उपेक्षा करते हुए, प्राप्त किए धन में से उनकी मूर्ति के लिए भरसक चंदा देकर, उस मूर्ति के उद्घाटन समारोह के लिए आनेवाले बातूनी नेता को छप्पन भोग खिलाकर, शानदार मोटर में बिठलाकर खुश कर देने से—बस, इतनी सी पूँजी के बल पर जनता की आँखों में आसानी से धूल झोंकी जा सकती है इस बात को ये लोग भली भाँति जानते हैं। इस कहानी के सेठजी इसी श्रेणी में के एक व्यक्ति हैं। सभा—स्थान पर एक हरिजन लड़के के गले में फूलों की माला पहनाने का नाटक करने में सिद्धहस्त हैं परन्तु जब उसी लड़के की सहायता करने का सवाल उठता है तब अपने सभी सिद्धांतों का सेठजी को जैसे विस्मरण हो जाता है। वास्तव में उनकी देशभक्ति यह पूजा

नहीं है, वह तो केवल पूजा का बाह्य आडंबर है !

इस नीति को धनवान लोग हमेशा से अपनाते आए हैं। पददलित और पीड़ित वर्ग कहीं विद्रोह न कर बैठे इसलिये वे हर एक मौके पर इस तरह के नाटक भी हमेशा से खेलते आए हैं। धन की प्राप्ति किस प्रकार की जाय इस बात का ज्ञान सेठजी ने जैसे जनम घूँटी ही में पाया है उसी तरह अभिनय कुशलता में भी वे अत्यंत निपुण दिखाई देते हैं।

इस कहानी का रघुनाथ मध्य श्रेणी की अर्ध-जागृत परन्तु दुर्बल आत्मा का प्रतिनिधि है। दलितों की पीड़ा का वह अनुभव कर सकता है—उस पीड़ा को दूर करने की यथा-शक्ति चेष्टा भी वह करता है। परन्तु स्वयं उसकी सामर्थ्य सीमित है। उस हरिजन लड़के की अपेक्षा उसकी पारिवारिक अवस्था कुछ अंश में अच्छी है फिर भी स्वयं वह भी तो समाज रूपी सागर में एक छोटी सी मछली ही है ! सीताराम जैसे हरिजन लड़के का एक सौ सैंतीस रुपए आठ आने कर्ज चुकाने में सहायता करना यह बात इस सहृदय मामूली कर्न की सामर्थ्य के बाहर है। वह अपनी आँखों से एक दृश्य देखता है कि अपनी रखैल के भाई को भेंट देने के लिये इतनी बड़ी रक्कम सेठजी आसानी से दे सकते हैं और तुरन्त उसे दूसरा दृश्य भी दिखाई देता है कि उतने ही रुपयों के लिये सीताराम जैसे होनहार लड़के को अपनी पढ़ाई अधूरी ही छोड़कर नौकरी की खोज में दर दर की ठोकें खाने के लिए गाँव का त्याग करना पड़ता है ! किन्तु इस घटना के पीछे छिपे रहस्य का उद्घाटन करने की चेष्टा ही न करने के कारण उसका मन विद्रोही नहीं बन पाता। वह तो सिर्फ दिल मसोसकर और आँसू बहाकर चुप रह जाता है। परन्तु सिर्फ आँसू बहाने से किसी सामाजिक-क्रांति का सूत्रपात न हो पाया है और न कभी भविष्य में हो पाएगा। उसके लिए तो मानव की आत्मा में की सुप्त अग्नि को प्रज्वलित करना आवश्यक होता है। जिस समय इस बात का ज्ञान मध्य श्रेणी के लोगों को अत्यन्त प्रखरता के साथ होगा, उसी समय उनका और दीन दुखियों का जगत् एक हो जायेगा, अभिन्न हो जायेगा और ऐसा होने पर ही महान् सामाजिक क्रांति शीघ्रता से कदम बढ़ाते हुए अवतीर्ण हो पाएगी !

कोल्हापूर.

वि. स. खांडेकर



